सर्वदा सावधान रहो ! नहीं तो विषय रूपी चोर
तेरी विवेक रूपी आँखों को फोड़कर संसार
रूपी भयंकर जंगल में फेंक देंगे !

ब्रह्म, जीव और जगत् सम्बन्धी
आध्यात्मिक ज्ञान-विचार

स्वरूप-परिचय

आध्यात्म विद्यार्थी
रामसूरत लाल कश्यप
अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक
ग्राम, पोस्ट, थाना—सुहवल
जिला-गाजीपुर (यू० पी०)

सर्वदा सावधान रहो ! नहीं तो विषय रूपी चोर
तेरी विवेक रूपी आँखों को फोड़कर संसार
रूपी भयंकर जंगल में फेंक देंगे !

ब्रह्म, जीव और जगत् सम्बन्धी
आध्यात्मिक ज्ञान-विचार

स्वरूप-परिचय

आध्यात्म विद्यार्थी
रामसूरत लाल कश्यप
अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक
ग्राम, पोस्ट, थाना—सुहवल
जिला-गाजीपुर (यू० पी०)

दुनियाँ तो है प्रभु को लीला भ्रम से तू अपनाया रे।
दुनियाँ में भोगी बन बैठा आतम रूप भुलाया रे॥
झूठी दुनियाँ को सच कहता है निज को नहिं लख पाया रे।
झूठी को झूठा नहीं समझा जीवन व्यर्थ गँवाया रे॥

—कश्यप

लेखक की अन्य कृतियाँ :—

(१) व्याकरण अपठित ज्ञान-माला
(२) शिव महात्म दर्शन
(३) अध्यात्मिक ज्ञान-विचार (स्वरूप परिचय)
(४) मानव जीवन मीमांसा
(५) शङ्कर मीमांसा (शिव चरित)

मूल्य—जन कल्याण

पुस्तक मिलने का पता :—

दारागंज सेवाश्रम, वाराणसी

प्रकाशक : कश्यप प्रकाशन, सुहवल, गाजीपुर।

सपर्पण

वाराणसी दारागंज आश्रम के परमहंस महाराज जी श्री
योगिराज बाल ब्रह्मचारी त्यागमूर्ति सद्गुरु
श्री स्वामी सर्वदानन्द जी, महाराज
के चरण कमलों में
सादर समर्पित

सहसा एक दिन जन समाज में पुजारी हूँ का ढोंग दिखाया।
ढोंग क्रिया मनु अन्तः ध्वनि रही, खींच-खींच विवेक उर लाया।
भटक रहा था बहुत दिवस तक, गुरु जी के शरणों में जब आया।
शरणागत गुरु कृपा ज्योति से सतपथ की पायी मैं छाया॥

गुरु ॐ शरणम् हरि ॐ शरणम्
विचार सागर, विचार चन्द्रोदय, ब्रह्म सूत्र, वेदान्त सार,
तत्वानुसन्धान, अध्ययन का फल
आध्यात्मिक ज्ञान-विचार

अध्यात्म-विद्यार्थी :
रामसूरत लाल कश्यप
अवकाशप्राप्त प्रधानाध्यापक
ग्राम-पोस्ट-थाना—सुहवल
जिला—गाजीपुर (यू० पी०)

दो शब्द

भारतीय मनीषा चिरकाल से आत्मा और परमात्मा तथा जीव और जगत पर विचार करती चली आ रही है। इसी मनीषा ने मानव को आध्यात्मिक उन्नति तथा लौकिक सौहार्द्र के लिए अनेक शुभ विचार धाराएँ तथा क्रिया पद्धतियाँ पल्लवित की हैं। ऐसे अनेक महापुरुष हैं जो इन विचारों और क्रियाओं को अपना कर अपना कल्याण कर हैं।

आदरणीय पं० रामसूरत लाल जी कश्यप भी इसी श्रेणी के महापुरुष हैं। ये पेशे से अध्यापक रहे हैं। आज इक्यासी वर्ष की अवस्था में भी उनका अध्यापकपन मानव के कल्याण के चिंतन में रत है। हम सभी संसारियों के लिए उनकी यह कृति अत्यन्त मूल्यवान और श्रेयस्कर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण इस पुस्तक से निश्चय ही लाभान्वित तथा उद्बुद्ध होंगे।

प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे कश्यप जी शतजवी हों और ऐसी ही कृतियों से माँ भारती का भण्डार भरते रहें।

७-१-८७

शब्दलोक, वाराणसी

—(डॉ०) बदरीनाथ कपूर

लेखक की ओर से

ब्रह्म जीव शरीर के सम्बन्धित विषयों के भिन्न-भिन्न पहलुओं को लेकर इस पुस्तिका में स्वयं समझने का उद्योग मात्र है। अपने को समझने के लिए और स्वयं आध्यात्मिक आत्म ज्ञान की दृढ़ता लाने हेतु स्वत: लिख गया है। इन आध्यात्मिक भावों के लिखने का मुख्य कारण अपनी आध्यात्मिक कमी में दृढ़ता लाने हेतु तथा गुरुजी की कृपा हो जानें।

रोहतास जिला के सासाराम के कलक्टरेट विभाग में मेरे लौकिक बड़े लड़के श्री अभय नारायण लाल जी एक साधारण अधिकारी पोस्ट पर कार्यरत हैं। बड़े बाबू ब्रह्मनिष्ट श्रोतीय श्री स्वामी मेंही बावा महाराज जी की और ब्रह्मनिष्ट श्रोतीय स्वामी श्री शिवानन्द महाराज जी को आध्यात्मिक ज्ञान की अनेक ज्ञानभरी पुस्तकें लाते रहे हैं। उनकी वाणियों की ज्ञानभरी पुस्तकों को मुझे पढ़ने का सर्वदा सुअवसर ज्ञान लाभ मिला है और मिल भी रहा है।

दारागंज आश्रम वाराणसी के बाल ब्रह्मचारी श्रद्धेय ज्ञान मार्ग प्रदर्शक आदि ज्ञानदायी गुरु ब्रह्मनिष्ट श्रोतीय स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज के दर्शन लाभ तथा इनके द्वारा कई अध्यात्मिक पुस्तकों के पढ़ाने से और ज्ञान संकेतों वाणियों ने जीवन में नया मोड़ ही ला दिया। इतना ही नहीं यह अपना स्वरूप आत्मिक ज्ञान विचार नामी पुस्तक भी इन्हीं के आशीर्वाद का फल है।

ललिता घाट वाराणसी के ब्रह्मनिष्ट श्रोतीय स्वामी श्री मौनी बाबा महाराज जी की भी कृपा अनन्त रहती है उनका संकेतबराबर बढ़ते चलो ? बढ़ते चलो ? साहस की गागर में सागर भरता है।

चक्का घाट वाराणसी आश्रम के ब्रह्मनिष्ट श्रौतोय स्वामी श्री चेतनानन्द जी महाराज तो ८० वर्ष की आयु होते हुए भी काफी आध्यात्म का उत्साह बढ़ाते रहते हैं। बार-बार संन्यास लेने तथा आश्रम काशी में बसने और आश्रम के सर्वदा सतसंग का लाभ पाने के प्रति उपदेश देते रहते हैं। घर परिवार के नश्वर स्वरूप और स्वस्वरूप ज्ञान का लाभ स्वामी जी से बराबर मिलता रहता है।

मैं सभी आदरणीय प्रातः स्मरणीय गुरु ब्रह्मनिष्ट श्रौतीय स्वामियों के शरणागत हूँ। मैं सर्वदा सभी स्वामियों के आशीर्वाद शुभ सुझाव ज्ञान का भिखारी एक अज्ञ सेवक हूँ।

—राम सूरतलाल कश्यप

* मानसिक पूजा *

मुँह न खुले न तो जीभ हिले, मन राम का नाम तुम्हें लेना है।
श्रवण सम्हल पचड़ा मत सुन हिय में मन की ध्वनि को सुनना है।
नयन सम्भल दुनियां मत देख न वेसिक पर रूप तुम्हें लखना है।
बुद्धि सम्हल अन्तरमुखी बनो निज मानस में सतसग करना है॥

नोट—ब्रह्म अरूप है फिर भी मानव ने उसके अनेक नामों और रूपों को मान्यता दे रखी है। राम, कृष्ण, शिव, अल्ला, गाड, देवी, देवता उस एक व्यापक ब्रह्म सत्ता के अनेक नाम हैं। जीव छवों महाद्वीपों धर्म, जाति, धनी, गरीब सभी वर्गों में कर्मानुसार जन्म लेता रहता है। अल्ला, ईश्वर, गाड सब एक ही भगवान के नाम हैं। किसी एक की पूजा से सबकी पूजा और किसी एक के अपमान से सबका अपमान होता है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर उसका घर है। किसी धर्म के जुलूस का विरोध केवल जाति विशेष का अपमान अज्ञान है।

विषय सूची

१. जीव और ब्रह्म

जीव ईश्वर का अंश है। अंश टुकड़े या विभाग को भी कहते हैं। परन्तु जीव टुकड़ा या विभाग नहीं है। जीव तो ईश्वर का आभास होने से ईश्वर से अभिन्न ही है। ईश्वर सभी शरीरों में विद्यमान रह कर भी किसी शरीर के सुख एवं दुःखादि धर्मों से लिप्त नहीं होता। जैसे नाटक में एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में वस्त्रों और पात्रों के गुणों के अनुसार क्रियाशील होता रहता है परन्तु वह अपने वास्तविक स्वरूप को उन-उन क्रियाओं से निर्लिप्त समझकर उनसे स्वयं दुःखी या सुखी नहीं होता।

उसी तरह प्रभु की व्यापक सत्ता शरीरों की इन्द्रियों के गुणों के अनुसार उनमें चेतनता पैदा करती है। तभी इन्द्रियां पूर्व कर्म के अभ्यासानुसार वर्तमान समाज के प्रभाव से सत्कर्म अथवा दुष्कर्म में प्रवृत्त होती हैं परन्तु सत्ता निर्लिप्त है।

लिङ्ग देश में चेतन का आभास और अधिष्ठान अविद्या इन तीनों के समूह को वेदान्तदर्शन में जीव बताया गया है।

चैतन्यं यदधिष्ठानम् लिङ्ग देहश्चयः पुनः ।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्थातत्सङ् यो जीव उच्यते ।।

आत्मा शरीर का द्रष्टा होने से शरीर से पृथक् है। क्योंकि जो द्रष्टा होता है वह दृश्य से अलग होता है :-

घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः
सर्वथा न घटो यथा ।

देहद्रष्टा तथा देहाइ,
भिन्नो नान्नस्ति संशयः ।।

अर्थात् घड़े को देखनेवाला घड़े से अलग है स्वयं घड़ा नहीं। शरीर से अलग है स्वयं शरीर नहीं है।

इस अकाट्य निश्चय के अनुसार शरीर के धर्म जन्म-मरण, सुख दुःख एवं क्षुधा-तृषा आदि से मैं सर्वथा रहित शुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा हूँ का बोध होने से ज्ञानी जीवनमुक्त कहा जाता है और यही समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है।

यया यया भवेत् पुंआं
व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि,
सा सैव प्रक्रियेहस्यात्
साध्वी सा च व्यवस्थिति।

२. आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर

पिता-पुत्र के बीच संवाद

प्रश्न—पिताजी, जीव क्या है ?

उत्तर—पुत्र, जीव ईश्वर का एक अंश है।

प्रश्न—क्या ईश्वर का टुकड़ा (अंश) किया जा सकता है ?

उत्तर—नहीं। ईश्वर के अंश से तात्पर्य ठीक उसी तरह है जैसे—सूर्य एक है लेकिन उसका प्रकाश जड़-चेतन सर्वत्र पड़ता है इसी प्रकार ईश्वर का टुकड़ा नहीं होता। बल्कि उसका प्रकाश-आभास (अंश) जीव है।

प्रश्न—जीवों की कितनी योनियाँ हैं।

उत्तर—जीवों की चौरासी लाख योनियाँ हैं इन्हें अण्डज, पिण्डज, उद्भिज, स्वेदज योनियों में बाँटा गया है।

प्रश्न—क्यों जीव बार-बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है ?

उत्तर—जीव को जब तक अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता

तब तक वह बार-बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है। जीव को अनादिकाल से यह भ्रम हो गया है कि मैं शरीर हूँ। इसी से वह अपने को ब्राह्मण क्षत्री स्त्री-पुरुष, कर्त्ता-भोक्ता इत्यादि समझ बैठा है। उसे अपने वास्तविक शरीर का जब तक ज्ञान नहीं होगा तब तक वह जन्म-मरण रूपी भव-बन्धन से छूट नहीं सकता। इसे समझाने के लिये एक कथा सुना रहा हूँ—एक गड़ेरिया अपनी भेड़ों को चराने के लिये बन में जाता था। एक

दिन एक गुफा के पास बाघ के एक नवजात बच्चे को देख गड़ेरिया उस बच्चे का उठा लिया। वह उसे अपनी भेड़ों में रखता था। भेड़ों के साथ खुले बाड़े में छोड़ देता था। वह बाघ का बच्चा भेड़ों के साथ खेलता-कूदता रहने लगा। गड़ेरिये ने उसका नाम बकरा रख दिया था। बाघ का बच्चा युवा हो गया फिर भी भेड़ों के साथ रहते-रहते अपने स्वरूप को भूलकर अपने को बकरा ही समझता रहा। इस तरह बाघ को अपने बकरा होने का निश्चय दृढ़ हो गया। एक समय की बात है कि प्रतिदिन की तरह वह बाघ भेड़ बकरियों के साथ चर रहा था कि वहाँ एक और बाघ आ निकला। अपने एक भाई को भेड़ों के साथ चरते देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसने घोर गर्जना की। उसकी गर्जना सुनकर सब भेड़-बकरियाँ और वह बाघ भी जो बकरियों के साथ था सब भागने लगे। बाघ के बच्चे को भागते देखकर जंगली बाघ ने उसे पुकारते हुए कहा—अरे मेरे स्वजातीय मित्र, ठहरो ठहरो तुम क्यों भाग रहे हो। तुमसे एक बात कहनी है। जंगली बाघ की बात सुनकर भेड़ों के साथ पलनेवाला बाघ ठिठक कर खड़ा हो गया। जंगली बाघ ने उसके पास जाकर कहा अरे भाई! तुम बाघ हो इन भेड़-बकरियों के साथ क्यों रहते हो? मुझे तो देखो। तुम तो मेरे समान हो। इस पर भेड़ों के साथ में पलने वाले बाघ ने कहा—मैं बकरा हूँ मुझे बाघ कहने की कुचेष्टा मत करो। इस पर जंगली बाघ ने सोचा मालूम होता है कि इसने जब से जन्म लिया है तब से भेड़-बकरियों में पला है और गड़ेरिया इसे बकरा कहकर ही पुकारता है। अतः इसने स्वयं को बकरा समझ लिया है। इसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं रहा। इसको अपने मिथ्या स्वरूप का अभ्यास दृढ़ हो गया है। इसलिए मुझे उचित है कि मैं उपदेश देकर इसकी मिथ्या भ्रांति को दूर करूँ। यह निश्चय कर जंगली बाघ ने बकरियों के साथ पलने वाले बाघ से कहा—भाई तुम

स्वयं विचार करके देखो कि ये भेड़-बकरियाँ आकार में छोटी हैं। और तुम इन सबसे बड़े हो। अतः तुम बकरे नहीं हो। जरा मेरी ओर देखो मैं बाघ हूँ। तेरे सब लक्षण मुझसे मिलते हैं। तुम बकरे नहीं हो। बाघ हो। इस तरह शरीर की बनावट का जंगली बाघ ने उपदेश दिया और उसे कुएँ पर ले गया। कुएँ में अपनी परछाई और उसकी परछाईं की समता कराई। तब भेड़ बकरियों के साथ-साथ रहनेवाले अज्ञानी बाघ ने अपने मिथ्या भ्यास को त्याग दिया। स्वय को बाघ समझ कर अपने मन में पश्चाताप करते हुए कहने लगा। मुझसे बड़ो भूल हुई। मैं अपने स्वरूप को भूल गया था स्वय को बकरा मानकर वन्धन में पड़ा रहा। अब मैं बकरों के साथ नहीं रहूँगा बल्कि उनका नाश करूँगा। यह निश्चय कर उस अज्ञानी बाघ ने बकरियों का साथ छोड़ दिया। अपने वास्तविक स्वरूप को समझ कर उस जंगली बाघ के साथ हो लिया।

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि जिस तरह अज्ञानी बाघ अपने स्वरूप को भूल गया था उसी प्रकार अनादिकाल से जोव अपने सत-चित-आनन्द स्वरूप को भूलकर अपने को देह स्वरूप समझ बैठा है। इसी भ्रम के कारण वह बार-बार जन्म आर मृत्यु का प्राप्त हो रहा है।

प्रश्न—चौरासी लाख योनियों में कौन सी योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है ?

उत्तर—मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है गोस्वामी तुलसीदास की वाणी सुनें :-

'नर समान नहिं कवनेऊ देहीं, जीव चराचर जांचत जेही।'

जीव का जब बहुत बड़ा पुण्य उदय होता है तब नर योनि मिलतो है। चौरासी लाख योनि के चक्कर से छुड़ाने वाली केवल एक यही नर योनि है। इस योनि को पाकर यदि मनुष्य अपने

स्वरूप को समझने की कोशिश नहीं करता है तो उसे पुनः चौरासी लाख योनि वाले कारागार में ढकेल दिया जाता है। इसको स्पष्ट करने हेतु तुम्हें एक कथा सुना रहा हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो :-

एक नगर में एक अंधा रहता था दुःख उठाने के कारण उसकी इच्छा नगर से बाहर जाने की हुई। उसने एक आदमी से पूछा नगर से बाहर जाने का रास्ता कहाँ है? आदमी ने कहा- नगर से बाहर जाने का रास्ता एक ही है। किले की दीवार को पकड़ कर उसके सहारे-सहारे चलते जाओ जहाँ दरवाजा मिले वहीं से निकल जाना। अंधे ने यही क्रिया प्रारम्भ किया। किले की दीवार पकड़कर चलने लगा उस अंधे के शरीर में दाद थी। चलते-चलते दरवाजे के पास पहुँचा तो उसी समय दाद में खुजली होने लगी। वह अपने दोनों हाथों से दाद खुजलाने लगा। दीवार छूट गयी। दरवाजे से आगे निकल गया। फिर वह दीवार के सहारे आगे चलने लगा। इसी प्रकार जब-जब दरवाजे के पास आता दाद में खुजली बढ़ जाती थी और दरवाजे से आगे बढ़ जाया करता था। दरवाजा न मिलने के कारण वह चक्कर पर चक्कर लगाता रहा और इस प्रकार कष्ट भोगता रहा। अंधे के स्थान पर अज्ञानी जीव को समझना चाहिए। किले की दीवार की जगह पर चौरासी लाख योनियाँ समझनी चाहिए। द्वार के स्थान पर मनुष्य का शरीर समझना चाहिए। दाद की जगह विषय-वासना का सुख समझना चाहिए। दृष्टांत के अनुसार जब मनुष्य चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् मुक्ति के दरवाजे के समीप आता है तो ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश के अनुसार अपने स्वरूप को पहचान कर चौरासी लाख योनियों की फेरी से निकल कर मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिए परन्तु अज्ञानी अज्ञान रूपी अन्धता से ग्रस्त हो जाता है तो वह मनुष्य शरीर को मुक्ति का द्वार न जानकर अनेक प्रकार के विषय भोग झूठे आचरण अर्थात्

दाद को खुजलाने में पड़ जाता है। और पूरी आयु बिता देता है। वह बैल, घोड़ा, गधा, शूकर, कुकर आदि की योनियों में चक्कर काटता रहता है और बार-बार जन्म-मरण का कष्ट भोगता ही रहता है।

प्रश्न—पिता जी आपके उपरोक्त कथन से यह तो स्पष्ट हो गया कि नर योनि सर्वश्रेष्ठ है कृपया यह बताने का कष्ट करें कि नर योनि क्यों सभी योनियों में श्रेष्ठ कही गयी है ?

उत्तर—नर योनि के अलावा जितनी योनियाँ हैं सब भोग योनियाँ हैं। यहाँ तक कि देव योनि भी भोग योनि है। जब तक उनके अच्छे पुण्य कर्म रहते हैं तभी तक देव स्वर्ग में रहते हैं। पुण्य क्षीण होते ही पृथ्वी पर ढकेल दिये जाते हैं। आपलोग जानते हैं रावण और कुम्भकर्ण किसी समय भगवान के यहाँ जय और विजय नाम के द्वारपाल थे। लेकिन पुण्य क्षीण होते ही सनकादिक मुनि के श्राप से उन्हें राक्षस योनि में आना पड़ा। मनुष्य योनि भोग योनि तथा कर्म योनि दोनों हैं। मनुष्य शुभ कर्मों के द्वारा अपना लोक परलोक सुधार सकता है। अपने वास्तविक स्वरूप को समझकर जीवन-मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न—पिताजी हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है ? इसे बताइए।

उत्तर—अपना वास्तविक स्वरूप जानने के पहले अपना शरीर कितने प्रकार का है यह जानना आवश्यक है।

प्रश्न—पिता जी शरीर कितने प्रकार का होता है ? बताने की कृपा करें।

उत्तर—शरीर चार प्रकार का होता है :- (१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण (४) महाकारण। ये चार शरीर हैं।

प्रश्न—पिता जी चारो शरीरों को व्याख्या सहित समझाने का कष्ट करें।

उत्तर—सबसे पहले स्थूल शरीर को बता रहा हूँ। यह शरीर पाँच महा भूतों से बना है। इन पाँच भूतों में आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी तथा जल हैं। प्रत्येक भूत के भी पाँच-पाँच गुण (तन्मात्राएँ) होते हैं, इस तरह कुल पचीस तत्त्व हुए। इन्हीं पच्चीस तत्त्वों से स्थूल शरीर का निर्माण हुआ है।

प्रश्न--पिता जी शरीर के पाँचों भूतों को कैसे जाना जा सकता है, कृपया इनके गुणों (तन्मात्राओं) पर भी प्रकाश डालें ?

उत्तर--इस शरीर में जितने भी भाग कठोर हैं वे सब पृथ्वी के हैं। इस शरीर में जितने भी भाग द्रवीभूत हैं, जल के हैं। जो भाग उष्ण हैं सब तेज (अग्नि) के हैं। चलने फिरने वाली आदि क्रियाएँ वायु के योग से होती हैं और शरीर के जितने भाग खाली हैं। आकाश के हैं।

पृथ्वी के तत्त्व—अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी और रोम हैं।

जल के तत्त्व - शुक्र, रक्त, लार, मूत्र, स्वेद हैं।

तेज के तत्त्व—क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा और कान्ति हैं।

वायु के तत्त्व—चलन, जलन, धावन, प्रसरण, संकोचन।

आकाश के तत्त्व—काम, क्रोध, शोक, मोह, भय।

स्थान भेद के अनुसार शरीर में :-

आकाश का स्थान— (१) कट्याकाश (२) उदराकाश (३) हृदयाकाश (४) कण्ठाकाश और (५) शिराकाश। यह स्थूल शरीर की क्रिया प्रत्यक्ष देखी जाती है और इसी शरीर की मृत्यु होती है। मब भाई-बन्धु इसी स्थूल शरीर की पहचान रखते हैं, उसी को सगे-सम्बन्धी अपना समझते हैं। पुनर्जन्म का अपना पुराना सगा जीव साथ में रहता है लेकिन बदले शरीर के कारण वह नहीं पहिचान में आता है।

प्रश्न—क्या यह शरीर अपना नहीं है ?

उत्तर—नहीं यह पंचभूतों का है। मृत्यु के बाद पंचभूत इसे वापस ले लेते हैं। वास्तव में यह शरीर किराये के मकान को तरह है। और इसको जानने वाला अलग है। इसे हमें एक दिन छोड़ना ही होगा कारण यह अपना नहीं है। इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि यह शरीर अपना वास्तविक स्वरूप नहीं है।

प्रश्न—पिता जी स्थूल शरीर के बाद अव सूक्ष्म शरीर का वर्णन करें ?

उत्तर--सूक्ष्म शरीर के अन्तंगत पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण तथा अंतःकरण आते हैं।

प्रश्न--कृपया पाँचों कर्मेन्द्रीय. ज्ञानेन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण को समझाकर बतायें ?

उत्तर--पाँच कर्मेन्द्रिय हैं-हाथ, पैर, वाणी, गुदा तथा शिश्न। इनके द्वारा कर्म किये जाते हैं। इसलिए इन्हें कर्मेन्द्रिय कहा जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों का नाम आँख, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा है। इन पाँचों के पाँच विषय हैं. इन्हें क्रमशः रूप, गंध, शब्द, रस तथा स्पश जानो। पाँच प्राणों के नाम इस प्रकार हैं---व्यान, उदान, समान, प्राण तथा अपान। व्यान वायु शरीर के सब सन्धियों को मोड़ने में, समान वायु नाभि स्थान में रहकर अन्न को पचाने में, उदान वायु कण्ठ में रहकर जल तथा अन्न को अलग-अलग करने में, प्राण वायु-हृदय स्थान में रहकर श्वास क्रिया में तथा अपान गुदा स्थान में रहकर मल विसर्जन में मदद करता है। पाँच अन्तःकरण के अन्तर्गत अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आते हैं। अन्तःकरण के द्वारा कोई भी काम करने के प्रथम स्फुरण मन के द्वारा करने न करने का निश्चय होता है। बुद्धि के द्वारा संकल्प विकल्प होता है। चित्त के द्वारा चिन्तन अर्थात् कार्य किस प्रकार किया

जाए तय होता है। और अहंकार के द्वारा अमुक कार्य मैं करूंगा इस प्रकार का अभिमान होता है। मरने पर पंचभूतों को सूक्ष्म अनुभूति तथा जीवन भर का सूक्ष्म शुभाशुभ कर्म जीव के साथ जाता है। इसी को सूक्ष्म शरीर माना गया है।

प्रश्न--क्या यह सूक्ष्म शरीर ही हमारा वास्तविक स्वरूप है ?

उत्तर--नहीं, यह भी हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। हमारा स्वरूप इससे भी भिन्न है और तू सूक्ष्म शरीर को भी जानने वाला है। मृत्यु के पश्चात् भी सूक्ष्म शरीर जीव के साथ लगा रहता है।

प्रश्न—पिता जी आपने दो शरीरों का वर्णन किया यह हमारी समझ में आ गया। कृपया अब तीसरे शरीर को बताने का कष्ट करें।

उत्तर--तीसरा शरीर है कारण शरीर। कारण शरीर अज्ञानता से बना है। अपने वास्तविक स्वरूप को न जानने का कारण केवल अज्ञानता ही है। इसी अज्ञान के कारण हम अपने सत् चित् आनन्द स्वरूप को न जानकर अपने को स्थूल शरीर या सूक्ष्म शरीर समझ बठे हैं। इस अज्ञानता को जानने वाला ही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। इसको एक उदाहरण द्वारा समझा रहा हूं। ध्यानपूवक सुनो :-

यदि कोई तुमसे पूछे कि क्या तुम अपने वास्तविक स्वरूप को जानते हो तो शायद तुम यही कहोगे कि मैं स्थूल तथा सूक्ष्म देह को तो जानता हूँ पर अपने को नहीं जानता कि मैं कौन हूँ। इसी का नाम अज्ञान है। लेकिन यह कहना भी कि मैं अपने को नहीं जानता बिना ज्ञान के सम्भव नहीं। यदि विचार करो तो अनुभव से यह देखोगे कि अज्ञान को जानने वाला शरीर में श्वास स्वरूप साक्षी आत्मा ज्ञान रूप है।

इसी को एक दूसरे उदाहरण द्वारा समझो। तुम्हें ऐसा अनुभव होगा कि अमुक दिन मैं बड़े आनन्द के साथ सोया। क्या तुमने कभी विचार किया है कि ऐसा कहने या बताने वाला कौन है ? सुषुप्ति अवस्था में सारी इंद्रियाँ विलीन हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में वह कौन सी शक्ति है जो सुषुप्ति अवस्था में भी चैतन्य रहती है और जगने पर यह बताती है कि अमुक रात सुख की नींद सोए। इसी तरह अज्ञान को जानना बिना ज्ञान के नहीं हो सकता तथा सुषुप्ति की अवस्था को बताने वाला बिना चेतनता के सम्भव नहीं, यही अज्ञान कारण शरीर है।

प्रश्न—पिता जी आपके उपदेश से हमारा वास्तविक स्वरूप न तो स्थूल देह है न तो सूक्ष्म देह है और यह कारण शरीर भी अपना स्वरूप नहीं मालूम पड़ रहा है। कृपया हमारा वास्तविक क्या स्वरूप है; स्पष्ट करें ?

उत्तर—अभी तुम्हें बता रहा था कि अज्ञान का ज्ञान द्वारा तथा सुषुप्ति का ज्ञान चेतनता द्वारा ही होता है। यह ज्ञान तथा चेतन स्वरूप ही चौथी महाकारण देह से जाना जाता है।

प्रश्न—क्या यह महाकारण देह ही अपना वास्तविक स्वरूप है ?

उत्तर—नहीं। तू इस महाकारण देह का भी द्रष्टा साक्षी है। महाकारण देह की प्रकाशक आत्मा शुद्ध स्वरूप है। अर्थात् निर्मल, सामान्य, नित्य एवं ज्ञान रूप है।

प्रश्न—पिता जी स्वप्न, सुषुप्ति और स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर को जाननेवाला आत्मा है। समझ में आ गया। चौथी अवस्था तुरिया क्या है बताने का कष्ट करें।

उत्तर—तुरिया अवस्था में साधक को ब्रह्मज्ञान प्राप्त रहता है उसका लौकिक व्यवहार से सम्बन्ध छूट जाता है। साधक स्वतः अपने तन, वस्त्र, भोजन का प्रबन्ध करने में असमर्थ सा हो

जाता है। केवल ब्रह्मज्ञान में मस्त आनन्दित रहकर पारलौकिक आनन्द में विभोर रहता है। साधक को अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त रहता है।

प्रश्न – पिता जी, तुरिया अवस्था प्राप्त स्थिति और ब्रह्मात्मा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—तुरिया अवस्था साधक की महाकारण बननेवाली दैहिक अवस्था है। जिससे सत् चित्त आनन्द एकोऽहम बहुनास्ति अद्वैत ब्रह्म की सत्ता सिद्ध होती है। वही ब्रह्मात्मा आत्मारूपी साधक के शरीर में अपरोक्ष रहता है। ब्रह्मनिष्ठ सतगुरुओं के ज्ञान शरीर में आत्म ब्रह्म महाज्ञान ही महाकारण शरीर है। साधक की यही स्थिति तुरियावस्था कहलाती है। साधक की यह स्थिति जाननेवाला आत्मा द्रष्टा अलग है।

प्रश्न – पिता जी अपना वास्तविक स्वरूप क्या है बताने का कष्ट करें ?

उत्तर—हमने पहले ही बताया है कि अपना स्वरूप, स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण देह से परे तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था से भिन्न है। ये तीन अवस्थाएँ बुद्धि की अनुभूति की लीला है तथा इन तीनों अवस्थाओं तथा देह का साक्षी आत्मा सत् चित्त आनन्द स्वरूप है। आत्मा शुद्ध, निर्मल तथा स्वयं प्रकाश विभु है। हमारे वेद-वेदान्त ने ढिंढोरा पीट-पीट कर कहा है कि "एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति" केवल शुद्ध ब्रह्म के अलावा वर्तमान भूत भविष्य में न कोई था, न है, न होगा। जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह प्रभु की माया से घट-पट की तरह है। घट-पट रूपी स्वरूप को त्यागने पर केवल वही एक शेष रह जाता है। आत्मा एक है लेकिन भिन्न-भिन्न शरीर के संयोग से उसे अज्ञानी भ्रम वश भिन्न-भिन्न जानते हैं। जैसे जल को घड़े, लोटे, कटोरे या इसी तरह से नाना पात्रों

में भर दिया जाता है तो उसे भिन्न-भिन्न पात्रों के जल के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन जरा सोचो ! यदि सभी पात्रों को हटा दिया जाता है तो एक ही शेष बचा। वह है जल। इसी तरह कुम्हार मिट्टी से तरह-तरह के बर्तन बनाता है। लेकिन सब बर्तनों का आधार मिट्टी ही है। इसी प्रकार ब्रह्म एक है भ्रमवश नाना रूपों में भास रहा है। यह जगत् तीनों कालों में न था, न है, न होगा।

अतः अपने आत्म स्वरूप रूपी "रूप" ब्रह्म का ध्यान करो। देहाभास को त्याग इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने मन को अन्तर्मुख करो। अपने को आत्म स्वरूप ब्रह्म का दृढ़ निश्चय कर; सत्त, चित्त, आनन्द स्वरूप का अपरोक्ष अनुभव करो। सच्चा सुख यही है और इस मानव शरीर को प्राप्त करने का सबसे आवश्यक एवं पावन कर्त्तव्य यही है।

प्रश्न—पिता जी कर्म कितने हैं ? कर्म कैसे बनते हैं ? बताने का कष्ट करें।

उत्तर—कर्म तीन प्रकार के होते हैं—(१) संचित (२) प्रारब्ध (३) क्रियमाण।

संचित कर्म—जीव अनादिकाल से भिन्न-भिन्न शरीरों में रह आया है तथा अपने कर्म करता आया है। कर्मों में अच्छे कर्म और दोषपूर्ण कर्म दोनों शरीरधारी जीव से होते हैं। जीवन के शुद्धाशुद्ध कर्म सूक्ष्म रूप से चित्रगुप्त जी के यहाँ जमा रहते हैं। इसी भिन्न-भिन्न शरीरों से अपने किये गये कर्मों को संचित कर्म कहा जाता है। संचित अपने ही कर्म भोगने पड़ते हैं। तुलसीदास की वाणी सुनें—

कोऊ नाहीं सुख दुख कर दाता,
निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता।

प्रारब्ध कर्म—जीव को बार-बार शरीर ले कर जगत् में आना पड़ता है, यही विधि का विधान है। ऐसी दशा में जीव जब पुनः जन्म पाता है तो विधि उसके संचित कर्म में से कुछ भाग निकाल-कर उसी जीव के किये हुए कर्म को उसे भोगने के लिए देते हैं। इसको प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्ध जो विधि से निकल चुका है, जीव को उसे अवश्य भोगना ही पड़ेगा भले ही वह वर्तमान शरीर से शुद्ध कर्म करता हो। प्रारब्ध भोगने से ही छूटता है। एक पौराणिक कथा सुनो—

भीष्म जी का प्रारब्ध भोगने से छूटा। भीष्म जी एक सौ एक बाणों की शय्या पर पड़े थे। शरीर से खून और पीब बह रहा था। वे कराह रहे थे। अर्जुन ने उनकी दशा देखकर भगवान कृष्ण से पूछा, नाथ बतावें, "इतने बड़े धर्मात्मा दादा को इतना बड़ा कष्ट क्यों हो रहा है। तो कृष्ण जी ने कहा? इनका संचित कर्म ही इस देह में प्रारब्ध बनकर आया है। अर्जुन ने कहा-भगवन हमारे दादा ने तो कभी बुरा कर्म नहीं किया। कृष्ण जी ने कहा तुमको इस चमड़े की आँख से नहीं दिखाई दे सकता। अर्जुन के बार-बार पूछने पर भगवान कृष्ण ने उन्हें दिव्य दृष्टि दी। तब अर्जुन अपने दादा के पूर्व कर्म देखने लगे। पर सौ जन्म तक कोई कुकर्म नहीं दीख पड़ा। ज्यों ही १०१ जन्म आया तो देखते क्या हैं कि दादा बहेलिया बने हैं। तीर, कमान, लग्गो और जाल के साथ चिड़ियाँ फँसाने जा रहे हैं। पूरा दिन बीत गया। कोई चिड़िया नहीं मिली। रात हो गयी। दादा निराश होकर घर लौट रहे हैं। रास्ते में एक चमगादड़ उड़कर उनके सिर के पास आया। दादा ने जाल फेंका चमगादड़ उसमें फँस गया। घर आने पर प्रकाश में देखते हैं चमगादड़। मारे क्रोध के लाल हो गये। चमगादड़ के पंखों को फैलाकर ईंट से दबाकर उसके पूरे शरीर में काँटे चुभा रहे हैं। यह दशा देखकर अर्जुन आश्चर्य में पड़कर कहने लगे। दादा

चमगादड़ के शरीर में १०१ कांटे लगा रहे हैं। यह सुनते ही भगवान ने कहा—देखा, प्रारब्ध। बिना भोगे कभी छूट नहीं सकता। वह भोगने से ही छूटता है। बार-बार जन्म-मृत्यु के कारण पुराने से पुराना कर्म (अच्छा अथवा बुरा) प्रारब्ध में निकल जाता है।

क्रियमाण—वर्तमान जीवन में जो अच्छा अथवा बुरा कर्म होता है। वह चित्रगुप्त जी के यहाँ बराबर जमा होता रहता है। शरीर के कर्म का द्रष्टा आत्मा सर्वदा देख रहा है।

प्रश्न—पिता जी क्या संचित कर्मों को छुड़ाने का उपाय नहीं हो सकता ? बताने का कष्ट करें।

उत्तर—जो संचित कर्म अभी प्रारब्ध के रूप में नहीं आए। चित्रगुप्त जी के यहाँ जमा हैं उन कर्मों को छुड़ाया जा सकता है। जब मानव शुद्ध-शुद्ध कर्म करने लगता है धर्म ग्रन्थों का अध्ययन, धर्मनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं का उपदेश मानता है। सत-सगति का सम्पर्की बन जाता है और उसके ऊपर गुरु की कृपा हो जाती है तो जीव को अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा का बोध हो जाता है। उसे जीव भेद और ब्रह्म की एकता समझ में आ जाती है। जीव अपने स्थूल शरीर तथा नश्वर जगत् का वास्तविक स्वरूप समझ जाता है। केवल ब्रह्मार्पण बुद्धि ज्ञान से सब काम-क्रिया करने लगता है। तो संचित कर्म कई जन्मों का कई योनियों का जो कर्म पत्र चित्रगुप्त जी के यहाँ बना रखा है, फाड़ दिया जाता है। तब जीव चौरासी लाख योनियों के चक्कर से छुटकारा पा जाता है। ब्रह्ममय अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न—पिता जी आपने बार-बार कहा है कि संसार स्वप्नवत् है, लेकिन हमारी समझ से यह जगत् स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कृपया इसे समझा कर बताने का कष्ट करें।

उत्तर—ससार जो दिखाई दे रहा है उसकी सभी स्थूल फलतः नश्वर वस्तुएँ हैं और वे भासती भी हैं अपनी स्थूल नेत्र, बुद्धि, मन आदि इन्द्रियों को ही हैं, जो चेतन आत्मा की अविद्या माया की क्रिया है। चेतन का कम्पन छाया ही जीव का स्वरूप है। जैसे स्फटिक मणि के पास लाल फूल रख दिया जाय तो स्फटिक मणि पर लाल फूल की छाया पड़ने से मणि में ललाई छा जाती है अथवा लोहे का छोटा-छोटा बुरादा कागज पर रख दिया जाय और कागज के नीचे चुम्बक लगा दिया जाय तो चुम्बक के प्रभाव से लोहे का बुरादा लगता है। ठीक इसी प्रकार चेतन की छाया ही जीव बनकर अन्तःकरण की इन्द्रियों तथा प्राण आदि का संचालन करती है। इन्द्रियाँ स्वतः जड़ हैं ज्ञान रहित हैं सारी इन्द्रियाँ स्थूल हैं। आत्मा का कम्पन छाया ही जीव है, जो इन्द्रियों से काम लेता है। कर्त्ता भोक्ता बनता है। इस जीव के वास्तविक स्वरूप आत्मा द्रष्टा को न जानने के कारण दृष्टिगोचर नश्वर वस्तुएँ सत्य मालूम पड़ती है। ऐसा जानें। अज्ञान के कारण ही ससार की वस्तुएँ सत्य भावती हैं। ससार न था, न है, न रहेगा। आँखे भ्रम से नश्वर वस्तुओं को सत्य समझने की अभ्यासी बन गयी है।

अब प्रश्न उठता है कि स्थूल क्रिया का मूलक क्या है? क्या स्थूल रूप नश्वर नहीं है? हमारा स्थूल रूप नश्वर नहीं है? क्या स्थूल स्वतः बन गया है? पंचभूतों का संगठन कर्त्ता कौन है? इन उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर केवल एक है कि यह सनातन अनादि की लीला है। इसका मूलक अप्रत्यक्ष है। यह अनादि गोपनीयता ज्ञान से जानी जाती है। आत्मिक माया के भ्रम से नहीं। इस शरीर के कर्म को देखनेवाला अप्रत्यक्ष द्रष्टा है। उसके जानने की कला न जानने के कारण

हमलोग स्थूल के भ्रम जाल में फंसे हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप न जानकर उसकी छाया जीव की सांसारिक लीला को ही वास्तविक अपना स्वरूप मान बैठे हैं। अस्तु अपने भीतर द्रष्टा आत्मा को नहीं देखते नहीं जानते। नश्वर चौरासी लाख योनि को जानते हैं उससे निकलना नहीं जानते।

अब प्रश्न यह उठता है कि दृश्य पदार्थ क्या है ? सभी पदाथ तो दो रूपों में दिखाई देते हैं। (१) जाग्रत में (२) स्वप्न में। स्वप्न –स्वप्न में स्थूल शरीर का इन्द्रियाँ चारपाई पर साई रहती हैं फिर भी आत्मा स्वप्न के शरीर की रचना करता है उसको लिंग शरीर कहा जाता है। उसको जाग्रत की सब इन्द्रियों का बल प्राप्त रहता है। दौड़ना, सोना, खाना, डरना, धनी या गरीब बनना आदि-आदि क्रियाएँ सम्पन्न करता है। परन्तु स्वप्न का समय समाप्त होते ही स्वप्न की सारी क्रियाएँ निर्मूल बन जाती हैं। यह स्वप्न काल लघु होता है। अस्तु इसका प्रभाव कम तथा नहीं के बराबर पड़ता है। परन्तु जीवन भी दीर्घ स्वप्न है जिसकी आयु लम्बी से लम्बी तथा साधारण लघु रूप में भी होती है और जाग्रत रूपी स्वप्न की सारी क्रियाएँ जाग्रत में अपनी मालूम पड़ती हैं और ज्यादा दिनों तक उनका सम्बन्ध जीव से बना रहता है। अस्तु जाग्रत स्वप्न की नश्वर वस्तुएँ सच्ची सही भासने लगती हैं। परन्तु लघु स्वप्न की तरह दीर्घ जीवन स्वप्न को भी जानो। दोनों नश्वर हैं। इस जगत का स्वरूप जाग्रत दशा में सत्य ठीक उसी तरह भास रहा है जैसे स्वप्न की अवस्था में सब कुछ सत्य मालूम पड़ता है। जैसे निद्रा टूटते ही स्वप्न समाप्त हो जाता है उसकी वास्तविकता समाप्त हो जाती है। ठीक उसी तरह अज्ञान रूपी जाग्रत रूपी निद्रा को त्यागते ही एक ब्रह्म के अतिरिक्त शेष कुछ नहीं बचता। यह ससार झूठा मालूम पड़ने लगता है। जैसे स्वप्न का ज्ञान तुरत मिट जाता है वैसे ही जाग्रत का कार्य सम्बन्ध ज्ञान मृत्यु पश्चात् मानव का मिट

जाता है। वही जीव नाना प्रकार की योनियों में जाकर रहकर अपनी पुरानी-पुरानी वस्तुओं व सम्बन्धों के निकट रहने पर भी नहीं जानता पहचानता। भूल जाता है। प्रथम का धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं रहता। प्रमाण—

सत्य झूठ जाहि विधि जाने,
जिमि भुजंग रजु को पहिचाने।
जेही जाने जग जाई हेराई,
जाने सपन भरम मिटि जाई।।

अंधेरे में रस्सी का ज्ञान न होने से सर्प का भ्रम हो जाता है। प्रकाश रूपी ब्रह्म ज्ञान के जानने पर वास्तविक रस्सी स्वरूप ब्रह्म का ज्ञान होता है। वैसे ही सपने में नाना वस्तुओं का भ्रम बना रहता है, परन्तु वास्तविकता नहीं रहती है। वैसे ही भगवान की वास्तविकता जानने पर संसार की वास्तविकता भूल जाती है। भ्रम से आकाश को लोग नीला कहते हैं। मृग तृष्ना में पानी मानते हैं। सीप में चांदी होने का वास्तविकता देखते हैं। यह अज्ञान के कारण ही भ्रम होता है। ठीक ऐसे ही सच्चिदानन्द का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण संसार का भ्रम बना हुआ है।

प्रश्न—पिता जी सच्चा सुख क्या है? इसे कहां और कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर—यह प्रश्न तुमने बहुत ही अच्छा किया है। तुम जानते हो कि संसार के सभी प्राणी सुख पाने के लिए लालायित रहते हैं। लेकिन राजा से लेकर रंक तक किसी को सुख नहीं प्राप्त होता है। मानव अनादिकाल से इन्द्रियों के विषय धन-जन, पुत्र-पौत्र, भाई-बन्धु एवं अपनी मान-मर्यादा को ही भ्रमवश वास्तविक सुख मान बैठा है। जब कि वास्तविक सुख इनमें नहीं है। वास्तबिक सुख तो मानव के अन्दर है। जैसे मृग को ज्ञान न

होने से भ्रमवश कस्तुरी को सुगन्ध पा-पाकर उसकी तलाश में पूरा जंगल-जंगल मारा-मारा फिरता है।

कस्तुरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़े वन माँहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनियां देखे नाहि॥

कस्तुरी तो मृग की नाभी में ही है। ठीक ऐसे ही मानव के अन्दर सत्‌चित्‌ आनन्द आत्मा का वास्तविक सुख है, परन्तु वह भ्रम में पड़कर अविद्या के अज्ञान के कारण धन, पुत्रादि विषयों में सुख को प्राप्ति की अभिलाषा रखता है। उसे सुख मान बैठता है। इसके विषय में एक घटना का दृष्टान्त दे रहा हूँ—एक बहुत बड़ा धनी आदमी था उसका लड़का विदेश में पढ़ता था। एक दिन उसके एक मित्र ने खबर दी कि तुम्हारा लड़का हवाई जहाज से स्वदेश लौट रहा था। रास्ते में हवाई जहाज में आग लग गई, जहाज पर के सब लोग जल कर मर गये। उसा में तुम्हारा लड़का भी जलकर मर गया। यह समाचार सुनते ही पूरे परिवार में रोना चिल्लाना प्रारम्भ हो गया। लोग सिर पीट-पीट कर चेतनाहीन होने लगे। सबके हृदय में विषाद शोक के कारण अनियमित हल-चल मच गयी। सबका अन्तःकरण अशान्त बन गया। शान्ति और एकग्रता भग हो गयी।

पर वह लड़का बच गया था। थोड़े दिन बाद उस धनी का लड़का सकुशल घर आया। लड़के को देखकर सबको अत्याधिक आनन्द हुआ। अब तुम कह सकते हो कि लड़के के आने से सुख प्राप्त हुआ। लेकिन बात ऐसी नहीं है। सोचो, अब लड़का बराबर साथ रहता है। लेकिन वह सुख अब नहीं प्राप्त होता है, जो प्रथम दिन था। इससे स्पष्ट हुआ कि सुख लड़के में नहीं था परन्तु जिस समय पूरा परिवार विषाद के झंझावात में डूबा था सब अपनी शान्ति एकाग्रता खो बठे थे, सवत्र दुःख ही दुःख था। लड़के के आते ही सब इन्द्रियां शांत हो गयीं। अन्तःकरण एकाग्र हो गया। परिणाम

स्वरूप आत्मा के समुचित आनन्द के स्वरूप की सच्ची अनुभूति होने लगी। यही आत्मा की अनुभूति वास्तविक सुख है। इसी सुख सागर में बड़े-बड़े सन्त योगी तथा धर्मनिष्ठ सदा मस्त रहते है।

प्रश्न—एक ही शरीर (अन्तःकरण) में संसारी जीव और सच्चित आनन्द स्वरूप आत्मा कैसे रह सकते हैं ? स्पष्ट करके बताइये।

उत्तर—जैसे लोग दर्पण उठाकर स्वयं अपना मुँह देखते हैं और मुँह चमकाते, बाल सँवारते है तथा मुख की खराबी कालिख को मिटाकर पुनः दर्पण ज्यों का त्यों रख देते हैं। दपण शुद्ध सत अपने स्वरूप में बना रहता है। उसके प्रभाव से मानव स्वयं अपनी छाया अपने आप देखता है। छाया दर्पण से हो बनती है। दर्पण हटते छाया समाप्त हो जातो है। ठीक सत्‌चित आनन्द से जीव रूपी छाया बनती है। प्रभु के हटते छाया साथ ही साथ समाप्त हो जाती है। वैसे चेतन की छाया जीव अन्तःकरण की वृत्तियां में अपनी इच्छा पूर्ति हेतु इन्द्री आदि लौकिक सम्बन्ध वाले रस, रूप, गंध, शब्द, स्पर्श को अपना कर कर्त्ता भोक्ता संसारी माया युक्त आत्मांश जीव बनता है। यही ब्रह्मात्मा की माया वाली क्रिया को विशेष ज्ञान कहते हैं। उसी एक ही अन्तःकरण की वृत्तियाँ में सत्‌चित् आनन्द स्वरूप व्यापक अद्वैत रूप ब्रह्म की कला, निर्लिप्त, सृष्टि का कर्त्ता, पालक, सुधारक साधारण ब्रह्मज्ञान अलग बना रहता है। एक ब्रह्म के दो रूप (१) शुद्धमायायुक्त (२) शुद्ध मायायुक्त ब्रह्म अलग-अलग बने रहते हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश सब चीजों पर समान पड़ता है और सबको समान लाभ होता है। रूई को भी लाभ होता है। लेकिन उसी सूर्य की किरण (जीव) का दुरुपयोग आरसी शीशे द्वारा रूई पर किया जाता है तो रूई जल जातो है। ठीक इसी प्रकार कला रूप अनन्त ब्रह्म द्रष्टा आत्मा एक ही है। परन्तु अन्तःकरण

की कुवृत्तियों तथा मलीन वृत्तियों, मलीन इन्द्रियों का साथ करने के कारण आत्मा की छाया जीव अज्ञानी ससारी बनता है और वही जीव चौरासी लाख योनियों का चक्कर काटता है। ज्ञानी दूसरा भक्त शुद्ध जीव सत्‌चित आनन्द व्यापक अद्वैत आत्मा द्रष्टा संसार का पालक, कर्त्ता, सुधारक की शरण में जाकर मुक्त होता है।

प्रश्न—लोक में जीव भिन्न-भिन्न जीवों के योनिवाले शरीर में आता है। जैसे-मनुष्य, पशु, (बैल, गाय, बकरी, हाथी, घोड़ा) कीट, पतंग आदि आदि शरीर पाता है। कभी उन जीवों से निजी परिवार की तरह सम्बन्ध प्रेम स्थापित होता है और कभी-कभी एक जीव दूसरे का नाशक वनता है। यह रहस्य लौकिक है या पारलौकिक? पिता जी यह समझाने का कष्ट करें।

उत्तर—यह रहस्य बड़ा गम्भीर है। इसमें दैविक भौतिक और दैहिक तीनों प्रकार की क्रियाओं का सम्बन्ध जीव के कर्म के आधार पर होता है जिसकी क्रिया सामयिक और असामयिक दोनों हुआ करती है। जो स्वतः अपने व्यवहार कर्म से बनती बिगड़ती है। कुछ सांसारिक आपदाएँ अपने शरीर की असावधानी के फलस्वरूप होती हैं जिनमें हानिकारक और लाभदायक फल दोनों ही होते हैं। प्रमाण :–जीवों का सम्बन्ध (चाहे वे किसी योनि के क्यों न हों?) रहता है। सभी अपने पुराने सम्बन्धी हैं। केवल योनियों का रूपान्तर हैं। सब तभी एक साथ रहते हैं अपने पुराने से पुराने सम्बन्धी मिला करते है। केवल स्थान, पद, योनि परिवर्तित होती है। इसलिये सबके साथ अच्छा सम्बन्ध करें अच्छे सम्बन्ध वालों को अपने पूर्व का सच्चा, साथी, प्रेमी तथा मित्र जानो एवं अनुचित तथा हानि पहुँचाने वालों को अपने पूर्वकाल का विरोधी जानो। यह

आध्यात्मिक रहस्य है। परिवार के कुछ मानव भार स्वरूप समाज संगत के कारण अच्छे बुरे बनते बिगड़ते रहते हैं। अच्छे कर्मों द्वारा अपना संचित कुकर्म घटाया जा सकता है। बुरे कर्मों द्वारा संचित की वृद्धि होती है जिसको जीव को भोगना ही पड़ता है।

३. शरीर के मण्डल और उनका संधि स्थल

शरीर में पाँच मण्डल है जिनमें (१) सबसे ऊपर का भाग कैवल्य मण्डल है। जो चेतन महाप्रभु सर्वेश्वर कला रूप अनन्त भगवान का है। यह परामण्डल है। यहीं से पूरे त्रिभुवन का सचालन होता है। भक्तों का मुक्त स्थल है साक्षात् प्रभु का स्वरूप यही है।

(२) अपरा मण्डल सत. रज तम त्रिगुणात्मक जड़ात्मिका साम्यावस्था धारिणी चेतन प्रकृति के स्वरूप को महाकारण कहा गया है। यह मूल प्रकृति चेतन से ही संचालित व़ जीवित है।

(३) कारण–महाकारण के किसी विशेष भाग में किसी गुण का उत्कर्ष होता है तो वह भाग क्षुब्ध: होकर विकृत हो जाता है तब इस भाग से विश्व ब्रह्माण्ड की रचना होती है। अस्तु इसे कारण कहा गया है। ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का कारण जड़ात्मक मूल प्रकृति महाकारण में है। (४) इसके बाद सूक्ष्म है। (५) स्थूल शरीर जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

ध्यान सम्बन्धी महात्माओं का विचार :

(१) शरीर के बाहर कोई साधन करना व्यर्थ है शरीर के भीतर ही भीतर चलने से शरीर के मण्डलों को पार करना सम्भव है।

(२) सर्वेश्वर अपनी किरणों से सब में व्यापक हैं। अतः वे सर्वदा प्राप्त है। सर्वेश्वर सर्व व्यापक रहते हुए भी प्राप्त एक देशीय है। अर्थात् श्वास स्वरूप प्रत्येक प्राणियों में वर्तमान है। अस्तु एक देशीय परिमित स्वरूप वाले प्राप्त भगवान की किरणें

भो मण्डलों में परिमित रहती हैं। हाँ उनका अनन्त स्वरूप ही अपरिमित है जो परिमित का शासन करता है। अपरिमित अनादि प्रभु अनन्त है, कला रूप है, उन्हें प्राप्त करने के लिए अपने ही अन्दर चलकर ढूँढ़ना है। प्राप्त स्थिति में बड़ा विचित्र आनन्द आता है। ऊपर का ईश्वरीय केन्द्रीय शब्द नीचे दूर तक सुनाई देता है ऊपर की ध्वनि को ग्रहण करना है। प्रत्येक संधि से पास होकर ध्वनि नीचे सुनाई देती है।

(१) कैवल्य और महाकारण की संधि तक।

(२) महाकारण और कारण की संधि तक।

(३) कारण और सूक्ष्म की संधि तक।

(४) सूक्ष्म से स्थूल की संधि तक।

केन्द्रीय नाद शब्द कई रूपों में क्रमशः सुनायी देता है और नाद धीरे-धीरे स्पष्ट होता जाता है।

ध्वनि अभ्यास में सुरत (ध्यान) नीचे नहीं गिरता बल्कि ध्यान क्रमशः केन्द्रीय ध्वनि परमेश्वर की तरफ खींचता जाता है। श्वास और अनुभव की गति; हल्की और उर्ध्वगति को प्राप्त करती है।

ध्यान के पहले की क्रिया :—

(१) प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए। जिस मण्डल में मन लगाना है यदि मन भागे तो उसे बार-बार लौटाया जाय।

(२) रात को सोते समय मानस जप, मानस ध्यान जब तक जगे रहो करते रहो।

(३) देर तक ध्यान में बैठने से ध्यान लगेगा। ध्यान लगने के क्रम में स्वास की गति कम हो जाती है। नित्य दृष्टि योग से मन की चंचलता कम होती है। मन पर स्वास और दृष्टि स्थिरता का प्रभाव पड़ता है। मन कम भागता है, दृष्टि योग से दिव्य दृष्टि खुल जाती है। एक बिन्दुता प्राप्त होती है। (३) मन विशेष

उर्ध्वगति को प्राप्त होगा। तब सूक्ष्म नाद ध्वनि मिलेगी जिसमें लय होना है।

(४) जब मन लय होगा तब ध्यान (सुरत) के साथ मन का साथ टूट जावेगा। दृष्टियोग :-डीम पुतलियों को उलटना हानिकारक है। ऐसा नहीं करना चाहिए। दोनों आँखों की दृष्टियों को मिलाकर मिलन स्थान त्रिपुटी पर मन को टिकाकर उसे देखने से एक-बिन्दुता प्राप्त होती है। यही दृष्टियोग है। ध्यान को अपनी तरफ खींचने का इसमें गुण है। इस तरह आदि शब्द से यह ध्यान सुरत खींचती-खींचती ईश्वर साक्षात्कार तक पहुंच जाती है इसके लिये गुरु की शरण लेने से लाभ होगा।

४. ज्ञानप्रद आध्यात्मिक विचार

प्रभु की एकता में अनेकता दीखती है

एक ही गंगा जल लोटे, कटोरे, बाल्टी, गगरी, गिलास आदि बर्तनों में रखा गया है। एक ही जल का नाम लोटे का जल, कटोरे का जल, बाल्टी का जल, गगरी का जल आदि नाम एक ही जल का पड़ गया है। परन्तु जब सभी पात्रों को हटा दिया गया तो सब जल का स्वरूप एक जल हो गया। पहचानना कठिन हो गया कि किस पात्र का जल कौन है। ठीक इसी प्रकार अनन्त कला प्रभु की व्यापक एक ही सत्ता अनेक भूतों को चेतना प्रदान करती है। इन्हीं भूतों से अनेक शरीरों तथा योनियों की रचना कर रही है। एक सत्ता की व्यापकता अनेक शरीरों में भास रही है। वह सत्ता शरीर नहीं है। वह अनेक भूत जड़ों को जोड़ने वाली परा प्रकृति है। चाहे जो हम नाम रखें। वह प्रभु की सत्ता एक ही है। वह अदृश्य है। इसी के बल पर सभी जड़ समुदाय मिले दीखते हैं। सत्ता के हटते सभी भूत जड़ समुदाय बिखर जाते हैं। शरीर बनानेवाले भूत जड़ अपने भाग को बाँट लेते हैं और अलग-अलग अपने रूप में आ जाते हैं।

●

दुःखी जीव की पुकार

हे व्यापक अनन्त प्रभु जब तन में आपकी व्यापकता ही जीव का सत्य स्वरूप है, अथवा सीधी आपकी छाया ही जीव है तो

जीव को सही अपनी बुनियाद का (जिस सत्ता से पैदा हुआ है) ज्ञान होना चाहिए। परन्तु जीव जिस नश्वर शरीर में थोड़े दिनों के लिए ठहरा है उसी शरीर में आत्मा बने आप रहते हो। फिर भी जीव को शारीरिक ज्ञान में भूलने देते हो। इतना ही नहीं आप जीव के नश्वर शरीर को बार-बार बदल कर उसे नया-नया शरीर दिया करते हो।

जब आत्मा ही सच्चिदानन्द तुम्हारा स्वरूप है तो—आप जीव को नाना शुद्धाशुद्ध कर्म-जाल में फँसाने के लिये उसे नाना प्रकार का जालिया शरीर काहे को दे देते हो और अवतारिक शरीर से स्वयं प्रमाणित भी करते रहते हो। तुम शरीर की इन्द्रियों के गुणों में अपने अश जीव को फँसा देते हो और स्वयं इन्द्रियातीत बने रहते हो। यह आपकी अद्वैत लौकिक लीला है। जैसे कमल पत्र जल धारा में रहता है। फिर भी कमल पत्र पर जल का प्रभाव नहीं पड़ता है। ठीक प्रभु सत्ता इन्द्रिय गुण युक्त शरीर में रहती है। फिर भी शरीर की इन्द्रियों के गुणों का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। व्यापक जीवात्मा (प्रभु मुख्य सत्ता) इन्द्रियातीत बनी रहती है। इन्द्रियों के गुणों में रहनेवाली गौण छाया जीव बन जाती है।

देह में रहनेवाला कौन

सृष्टि का मूल कारण अधिष्ठान माया की व्यापकता ही है जो देह के अन्दर जीव बनकर लीला कर रही है। देही क्या है ? प्रभु की व्यापकता ही है। देह में व्यापक स्वरूप दूसरा जीव अलग नहीं है। शरीर में द्रष्टा, जीव दो अलग-अलग वस्तुएँ नहीं है। पूरी सृष्टि में एक, अनेक बने प्रभु ही हैं। वे अपनी व्यापक शुद्ध माया का इंद्रीयुक्त मलिन माया बशीभूत बने संसारी जीव की लीला करते हैं।

सभी चलायमान वस्तुएँ अपनी आयु अनुसार थोड़े काल समानान्तर आयु तक की साथी हैं।

सभी चलायमान वस्तुओं को देखो। सब चलते-चलते कभी कहीं समानान्तर अवश्य हो जाती हैं। प्रमाण स्वरूप सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी का ले सकते हैं। मानवी चाल आयु की समानता तो आये दिन की बात है। वैसे सभी जीव किसी न किसी शरीर में संसार में आया करते हैं। जो पुत्र, पिता, माता, भाई, बहन तथा नर-नारी का सम्बन्ध जोड़ते हैं। परन्तु कोई पूरी आयु तक साथी नहीं रहता है। परिवार वालों को पूरी जिन्दगी की थोड़ी आयु कुछ वर्षों तक ही समानान्तर रहती है। सम्बन्धित आयु सम्बन्ध प्रत्येक नातेदारों की आपसी समानान्तर आयु पर ही निर्भर है। जो मुश्किल से ३०, ४०, ५०, ६० वर्ष तक समानान्तर ही रह सकती है। वरना दोनों आगे पीछे आये हैं, जन्मे हैं, आगे पीछे जाएँगे, मरेंगे। सम्बन्ध केवल सबके समानान्तर बीच की आयु थोड़े दिन तक का ही साथ है। चाहे इसी आयु के अन्दर जो धन सम्पत्ति कोठी पाप पुण्य कमा लें। परन्तु सर्वदा का कोई साथी नहीं है। सर्वदा का साथी केवल अनन्त प्रभु की सत्ता जीव ही है। जानो आत्मिक ज्ञान ही अपना मुख्य साथी है। अहंकार युक्त व्यवहार व्यर्थ है।

जीव की लोकवाली प्रारम्भिक जीवनी

जीव ईश्वर का ही अंश है। उसकी स्थिति (स्वरूप) सूक्ष्म है। चूंकि बिना साधन के सूक्ष्म कभी कोई काम नहीं कर सकता है अस्तु जब संसार ने सूक्ष्म को जीव रूप में आना पड़ता है। तो संसार का काम करने से लिए अथवा अपने पूर्व कर्मों को शुद्ध करने के लिए भगवान उसे एक आकार (शरीर) दे देते हैं।

शरीर की बनावट—सूक्ष्म जीव का शरीर

सूक्ष्म जीव का रूप माँ के पेट में द्रव रूप विन्दु योनि जाति के रज वीर्य के अनुसार आदमी अथवा भिन्न-भिन्न पशु कीट पतंगे के रूप (शरीर) में आता है। लेकिन मां के उदर में सूक्ष्म जोव की इन्द्रियां काम नहीं करतीं, केवल रहती हैं। जीव मां के उदर में ब्रह्म के ध्यान का आश्रित बना रहता है। मां के उदर में इंद्रियों से जोव कोई काम नहीं कर सकता है। इंद्रियां ससार के लिए प्रभु ने बनायी हैं। मां के उदर में तो मुँह बन्द रहता है। नाभी मार्ग से नली द्वारा शरीर सिंचित रहता है। संसार में प्रत्येक प्राणी सिर के बल आता है यह प्रभु का विचित्र विधान है।

संसार में आने पर सभी इन्द्रियों को लौकिक ज्ञान होने लगता है। रस रूप गध शब्द स्पर्श का ज्ञान होता है। मायावी माँ दूध के बहाने माया की घुट्टी पिलाने लगती है। और संसार के सम्बन्धी माँ, पिता, परिवार को ज्ञान देने लगती है। बस जीव इन्द्रियों का वशीभूत हो जाता है। संसार के काम को असली समझ बैठता है। सूक्ष्म जीव अपने को शरीर मान बैठता है। अपने वास्तविक सूक्ष्म रूप को भूल जाता है। और अपने को संसारी कर्ता भोक्ता साधारण ज्ञानी मान बैठता है। अपने को ईश्वरांश चेतन सत्ता सूक्ष्म जीव नहीं समझता नश्वर शरीर को अपना मानता है जिसकी संख्या ८४ लाख है।

यदि जीव को प्रारम्भ से ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दो जाय और वह सतसंग में बैठने लगे. श्रोतोय ब्रह्मनिष्ट महात्मा का संग मिल जाय तो अपने साधारण सूक्ष्म रूप का ज्ञान हो जाय। तो जीव प्रभु अंश में मिल जाय। मुक्ति मिले।

एक ही ब्रह्म शक्ति में अनेक रूप नाम का लौकिक भ्रम

कला रूप अनन्त भगवान एक ही है परन्तु जब कभी समयानुसार लोक में आते हैं तो लोग अपनी रुचि के अनुसार उनका नाम राम, कृष्ण, अल्ला, गाड, शक्ति अनेक सात्विक नाम एक ब्रह्म का ज्ञान न होने के कारण रख देते हैं और अपनापन के भाव वश लड़ जाते हैं।

हर एक प्राणी प्रभु के एक ही स्थान से आता है और पुनः सबको एक ही स्थान पर जाना हैं। जाति, धर्म, देश, काल के कारण ब्रह्म भिन्न नहीं हो सकता। उस कैवल्य धाम में जीव को जाति धर्म नाम रूप का बखेड़ा नहीं है। शरीर धारी अज्ञ जीव तो अपरा जड़ और परा चेतन का निमित्त मात्र मिश्रण प्रभु का खिलवाड़ सृष्टि क्रिया का साधन है। जीव के माध्यम से प्रभु सृष्टि का कन्ट्रोल करते हैं। संसार में चाहे जिस जाति धर्म का कोई क्यों न हो सबको लौकिक इन्द्रीय क्रिया जीने की, मरने की, खाने की, नित्य क्रिया की, समान है। जाति, धर्म, नाम, रूप के कारण इन्द्रियों की क्रियाएँ भिन्न-भिन्न नहीं हो सकतीं। यह प्रभु की साम्यवादी कृपा है। इसमें जाति धर्म के बल पर भिन्नता लाना मानवता के विरुद्ध है।

कला रूप अनंत भगवान की यह महती कृपा है कि जीव को शुद्ध करने के लिए उसे बार-बार लौकिक कर्म क्षेत्र में भेजा करते हैं फिर भी हम अज्ञानी मानव लौकिक जाति धर्म तन पद हेतु लड़ते झगड़ते रहते हैं। जीव के कर्म सुधार हेतु जन्म मृत्यु वाली भगवान की महती कृपा से लाभ नहीं उठाते हैं। जिन धर्मालम्बियों में जन्म पाते हैं उस धर्म का ठीकेदार बन जाते हैं। यह नहीं सोचते कि अपने जीव को सभी धर्मों में जाना जाता है।

लौकिक क्रिया में पारलौकिक ब्रह्म की झलक

जैसे कुम्भकार गोंद, रंग और भिन्न-भिन्न मिट्टियों के मिश्रण को कूट पीस कर उसको नाना रूप वाला बर्तन खिलौना बनाने योग्य बनाता है। और उसके द्वारा नाना प्रकार के बर्तन खिलौना बना देता है। बर्तनों खिलौनों को देखने से कुम्भकार के हाथ की कला प्रकट होती है। लेकिन बर्तनों की कला के साथ कुम्भकार का हाथ नहीं रहता है। बर्तन, खिलौने टूट-फूट जाते हैं। परन्तु कला कुम्भकार की नहीं टूट जाती। कला कुम्भकार की उसके हाथ में निहित है।

ठीक इसी प्रकार प्रभु परा अपरा का मिश्रण करते हैं। पहले प्रभु मूल प्रकृति अपरा को चेतन करते हैं। और इसी चेतन मिश्रण अपरा से नाना प्रकारिक योनियों शरीरों की रचना करते है। और स्वयं स्वाँस स्वरूप चेतन बनकर प्राण स्वरूप शरीरों में ठहरा करते हैं। पुनः आयु पूरा होने पर साथ छोड़ा करते हैं। शरीर का रूपांतर होता रहता है। यह हस्तकला प्रभु के हाथों में निहित है। इसका रहस्य कोई नहीं जान सका। इस तरह प्रभु सत्ता की लीला देखकर ज्ञानी महात्मा मग्न रहते हैं और अज्ञानी इस परा चेतन अपरा जड़ की वियोग की लीला देखकर उसे मृत्यु कहते हैं।

शरीर मरा कहाँ है पंचभूतों ने जो भाग शरीर बनाने में दिया था अपने भाग को वापिस ले लिया। मिट्टी का सतहीन झूठा खोखला पड़ा है। सत्ता हीन है। केवल परा अपरा प्रकृति की स्प्रिंग ढीली हो गयी है।

प्रश्न—कौन सी स्प्रिंग ?

उत्तर—आयु रूपी स्प्रिंग।

त्रिगुणात्मक जड़ात्मक साम्यावस्था धारणी मूल प्रकृति और परा चेतन :

अंग्रेजों के शासन काल में देश की जनता को औपनिवेशिक आंशिक शासन सत्ता मिल थी पूरी नहीं। ठीक इसी प्रकार प्रभु मानव को अपरा (जड़) के माध्यम से अपनी आंशिक सत्ता (परा) मानव के कल्याण के लिये देते हैं। उस आंशिक सत्ता पर जोव से मानव स्वतत्र मनमानो क्रिया कर वैठता है। अपरा (जड़ शरीर) के दुर्गणों के वश में होकर बरवाद होता रहता है। चेतन से मिली आंशिक सत्ता पराजोव को अपने सुधार हेतु मिली है। अज्ञानी आंशिक जांव अपने को न जानकर शरीर जड़ को अपना मान वैठता है। शरोर में अपरा परा की दो शक्तियां हैं जिसमें मुख्य चेतन सत्ता है।

अपरा का जोवन सत्य परा पर निभर है जो लौकिक खिलौनों की भांति आयु रूपी स्प्रिग पर निर्भर है। जंसे जब खिलौनों की स्प्रिग ढीली हो जातो हैं तो खिलौनों का नाचना कूदना क्रियाशील होना वन्द हो जाता है वैसे पराचेतन रूपी पार लौकिक आयु स्प्रिग के ढीले होते हो ईश्वरोय खिलौना शरीर को लौकिक क्रिया लीला बन्द हो जाती है। केवल जीव का कर्म-कलाप सूक्ष्म शरीर बनकर जीव के साथ जाता है। ज्ञानो महात्मा ब्रह्मनिष्ठ श्रोतोय इस अपरा परा की लीला को खूब समझते हैं। अस्तु अपरा से मिली आंशिक प्रभु सत्ता को ही खोज में सर्वदा पड़े मस्त रहते हैं।

अपरा-परा के सत्यासत्य का निर्णायक दिन मृत्यु

प्रभु के आंशिक चेतन से ही अपरा जड़ शरीर है। नहीं तो अपरा जड़ शरीर सर्वदा मरा रहता है। यह सच्ची बात है। जानें, अनुभव करें, अपरा जड़ शरीर ससार का झन्झावादी सब काम प्रभु परा अंश चेतन बल से करता है प्रभु अंश चेतन हटने पर, मरने पर,

अपरा की क्या गति होती है। देखो ? जिस अपरा जड़ शरीर के प्रेमी, सम्बन्धी पहिचानने वाले लोगों से पूरा लौकिक घर परिवार भरा रहता है, वही अपरा जड़ शरीर चेतन ब्रह्म अंश के हटने पर बला, कार हो जाता है। अब आज उसको निर्मोही होकर लोग गाड़ फेंक देते हैं जला देते हैं। कोई नहीं कहता कि शरीर को रख लो। शरीर को शुद्ध रखने वाली चेतन सत्ता के निकल जाने पर उस शरीर को छूने पर गन्दगी का अनुभव होता है। भय लगता है।

पांच भूतों को मायिक ज्ञान इन्द्री और कर्म इन्द्री की लीला के बीच (ईश्वरांश) जीव :

पांच भूत गुण पांच मुख्य से, जीव पर शासन करते रे।
शब्द स्पर्श रूप रस गंध की ज्ञान इन्द्री बनी रखेली रे।
ज्ञान इन्द्री निज-निज मतलब से कर्म इन्द्री संग करती रे।
अन्तःकरण की चार वृत्तियां पांच भूत गुण दुश्मन रे।।
एक एक जड़ों से सम्भलो जीव के दुश्मन सारे रे।
शुद्ध सत्य चित्त अनन्द हृदय में वे ही हैं जीव के सहारे रे।
निश्चय जीव बिठालो हम हैं चेतन सत्य जड़ दुश्मन रे।
तभी लगेगा पार जगत का जग झञ्झा बात पुराना रे।।

व्याख्या—शरीर बनानेवाले पांच भूत आकाश, वायु, अग्नी और पानी, पृथ्वी हैं। यों तो प्रत्येक भूतों के पांच-पांच गुण हैं परन्तु इनमें पांच मुख्य गुण शब्द स्पर्श, तेज, रस और गन्ध हैं इन्हीं के द्वारा पांचो भूत जीव की शारीरिक ज्ञान इन्द्री पर शासन करते हैं मानों पांचो भूत ज्ञान इन्द्रियों को रखेली बना रखे हैं। इसी प्रकार प्रत्येक ज्ञान इन्द्रियां अपने सम्बन्धित एक-एक अपनी-अपनी कर्म इन्द्रियों पर शासन करती हैं। देखें कान इन्द्री है शब्द सुनना इसका काम है। लेकिन शब्द आकाश की देन है। इसी

तरह वायु की इन्द्री त्वचा है। स्पर्श इसका काम है। इसी प्रकार अग्नी की इन्द्री आंख है। देखना इसका काम है। पानी की इन्द्री जीह्वा है, रस लेना इसका काम है। पृथ्वी की इन्द्री नाक है, महक लेना इसका काम है।

अस्तु आकाश, वायु, अग्नी, पानी और पृथ्वी ये पांच भूत शरीर के हैं इनकी ज्ञान इन्द्रियां क्रमशः कान, त्वचा, आंख, जीभ और नाक हैं यदि ज्ञान इन्द्रियां काम करना बन्द कर दें तो सब भूतों का काम खटाई में पड़ जाय। ठीक इसी प्रकार कर्म इन्द्रियां हाथ, पैर, मुँह, पैखाना, पेशाब की इन्द्रियां ज्ञान इन्द्रियां का काम करना बन्द कर दें तो परा सत्ता जीव की क्या दशा होगी सोचें? लेकिन विधि का विधान ऐसा है कि पंच भूतों की दासी ज्ञान इन्द्रियां और ज्ञान इन्द्रियों की दासी कर्म इन्द्रियां इस स्थूल शरीर में बनी रहती हैं। पंच भूतों और चेतन प्रभु की प्ररणा से अन्तःकरण में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की प्रवृत्तियां पूरे स्थूल शरीर का दूसरा कन्ट्रोलर बनीं रहती है। अन्तःकरण के साथ ये चारो प्रवृत्तियां जड़ से बनी जड़ हैं। इनको दुश्मन जानो।

अन्तःकरण की प्रवृत्तियां ज्ञान इन्द्री और कर्म इन्द्री का सहयोग पाकर मन पंच भूतों के सभी पांच-पांच गुणों के कर्म को करने की बार-बार इच्छुक बना करता है। तब ईश्वरांश चेतना अपने वास्तविक स्वरूप की तरफ आकर्षित नहीं हो पाता। संसार, समाज, परिवार, धन, कोठी और पद के भुलावे में आ जाता है। सन्त समाज, ब्रह्म ज्ञानी समाज नहीं ढूँढ़ पाता। यदि जीव पंच भूतों की प्रेरित सुवृत्तियों के खेल का अभ्यास करे तब कुछ कल्याण होगा। पंच भूतों से बने अपने अंगों से वही काम करे जो सतचित आनन्द ब्रह्म की सत्ता की जीव को सच्ची सलाह हो। गन्दी सलाह क्रिया कलाप कुसंगतवाले अभ्यामी जीवों का कहना मानना, साथ

रहना अहितकर है। ऐसों का साथ छोड़ो उनकी वही बात सुनो जिससे आत्मिक लाभ हो।

पंचभूतों के नाम	गुण	गुण	गुण	गुण	गुण	कर्मइन्द्री	ज्ञानइन्द्री
आकाश	शोक	काम	क्रोध	मोह	भय	मुख	कान
वायु	प्रसारण	धावन	बलन	चलन	अंकुचन	हाथ	त्वचा
अग्नि	आलस्य	प्यास	भूख	कांति	निद्रा	पैर	नेत्र
जल	लार	पसीना	मुत्र	वीर्य	रक्त	मुत्रइन्द्री	जिह्वा
पृथ्वी	रोम	त्वचा	नाड़ी	मांस	हाड़	उपस्थ	नाक

आत्मिक उद्‌गार

[पदों के रूप में]

चौरासी के चक्कर का अनुभवी जीव

मैं कहां जाऊँ तजि शरण तुम्हारी प्रभु ?
मैं जीव अंश तेरा ही हूँ।
तुम पूरण ब्रह्म अज जानत हूँ—मैं कहां जाऊँ।
तुम द्रष्टा तन के साक्षी हो,
मैं तन इन्द्री का चेतन हूँ।—मैं कहां जाऊँ।
मेरा घर तेरे ही घर है
मैं लाखों वार से जानता हूँ—मैं कहां जाऊँ।
मैं भूल भुलैया की माया से
अपना घर पर जानत हूँ—मैं कहां जाऊँ।
मैं नश्वर तन पहचानत हूँ
निज ब्रह्म रूप अज भूलत हूँ—मैं कहां जाऊँ।
लोक अलौकिक भेद है हम में
मैं माया अविद्या चकृत हूँ—मैं कहां जाऊँ।

नश्वर शरीर में प्रभु हैं अनुभव करता हुआ प्रार्थी जीव

तन में निकट है डेरा तेरा अपना ठौर बता दो।
चेतन हो तन चेतन करते सत्ता से जीव बनाते हो ।
साथ छोड़ तन मृत्यु बनाते लीला पूरी करते हो।
सृष्टि बीच माध्यम तन बनते आंशिक लीला करते हो ॥

खेल सनातन यही है तुम्हारा सृष्टि की लीला करते हो।
यह रहस्य मूरख नहीं जाने धन जन नश्वर सम्पत्ति भूलें।
जग के झझा वात में रहकर आत्मिक सत्ता को हैं भूलें ।।

अपना वास्तविक स्वरूप शरीर के भीतर है।

भीतर को चलो, भीतर में रहो, भीतर ही में सच्चा रूप तेरा।
तुम चार जड़ों के बीच बसे अस्तु जड़ को कहता रूप मेरा।।
कैवल्य रूप अपना जानो सतचित आनन्द स्वरूप है रे।
जड़ झझा वात पुराना है कोई जल्दी थाह न पाया रे।।

लौकिक रूप में पारलौकिक छिपा रूप।

यह लौकिक रूप नहीं तेरा अनदेखा रूप तुम्हारा है।
तुम आत्मा की धारा जीव एक तुम्हें इन्द्रियाशक्ति भुलाया है।।
तुम इन्द्रियाशक्ति से दूर हटो परमात्मा की धारा पास में है।
वेदान्त ज्ञान यह मनन करो जीवन की सफलता इसी में है।।

जीव ब्रह्म में कार्य भेद है रूप भेद नहीं है।

तन का सत्य रूप तू ही है तेरे अंश का मैं हूँ जीव।
तुम में हम में भेद नहीं है तन में तुम द्रष्टा हो शीव।।
कार्य भेद हम दोनों में है कारण चेतन सभी में नींव।
स्थूल सूक्ष्म स्वर विन्दु ज्योति तू है तू सबका पीव।।

जीव का कर्मानुसार प्रत्येक योनियों में जाने की आत्म-कथा

स्थल जाति योनो सब अलग हैं, पर जीव जाति हम सब हैं एक।
सब योनियों में जीव हम जाते, अपना कर्म फल पाने नेक।।
अलग अलग धन कोठी सबकी पर जीव हम्हीं हैं मालिक एक।
कम क्रिया से रंक राजा घर राजा रंक भिखारी एक।।
नाम रूप पहिचान न मेरा शुभ कर्मों का फल सब एक।
बिना प्रयास जग सम्पति पाता अंश रूप तब होता एक।।
जीव का धन घर कोई न निश्चित जग धन कर्मविपाक फल एक।
पूर्व शुद्ध कर्म बल मिलता धन पद मान बड़ाई एक।।
यह लौकिक पार लाकिक बटवारा जग अपना कहता।
चौरासी की चक्की को, निशिदिन पीसा ही करता।।

●

इन्द्रियों की पेटी नश्वर शरीर में जीव।

नश्वर तन इन्द्री की पेटी में अमर जीव इक रहता ऐसा।
सीमित आयु कम सब लेकर स्वय चला जाता है ऐसा।।
अभिन्न नश्वर का मोहन उसको ऐसी भिन्न वस्तु है कोई।
हम अज्ञानी मूरख ऐसे उसे न जाने, जाने कोई कोई।।

●

अज्ञानी अमर ईश्वरांश जीव को न जान अपने को स्थूल शरीर जानता है।

अमर जीव की नश्वर लीला, स्थूल रूप जानें हम भूलें।
हम अज्ञानी पड़े भ्रम बीची, धन जन नश्वर सम्पति भूलें।
चीजें ज्यों की त्यों रह जातीं, निकट छोड़ भवनिधि चकराते।
लीला सतचित आनन्द प्रभु की, सत्ता भूल चौरासी भ्रमते।।

●

पूरा स्थूल शरीर जलने के बाद सब शरीर नहीं जलता

स्थूल जले से यह मत सोचो, जल गया सब कुछ बचा नहीं है।
बचा बहुत है जला है थोड़ा कारण सूक्ष्म भण्डार बचा है।।
बीज अंकुर से वृक्ष को बनाता, व्यापक मूल प्रकृति में भी है।
मूल प्रकृति चारो जड़ तन में जीवन बोज चेतन ही है।।

●

क्षण क्षण में अपना रूप बदल रहा है अनुभव करें।

रूप बदलता रहता तेरा, क्षण क्षण में अनुभव करना।
शिशु कुमार युवा बुढ़ा तन वृद्ध हुआ अब चुप रहना।।
अवस्था अनुसार आदर तन का था याद मुझे भी आता है।
शिशु तन वही वृद्ध शव सम है घृणित कुच्छि बैठा रहता है।।
तन को अपना जान दुखित तन को तू नहीं रख पाया रे।
जीव सत्य एक रूप तुम्हारा स्थूल बदलता आया रे।।

स्थूल बीच अनेक इन्द्री घर।
उनका रुख रहता है दो।।
निःस्वार्थ भाव लौकिक, पार लौकिक।
इन्द्री कर्म का यह रुख दो।।

घृणित कुकर्म एक इन्द्री रुख, इनसे बचकर रहना है।
शुद्ध सच्चिदानन्द एक रुख उसी का कहना करना है।।

●

ईश्वरांश जीव में भिन्न भिन्न योनि परिवर्तित है परन्तु निकट का सगा सम्बन्ध होता है।

मानव निज सम्बन्ध न भूलो, हम जीव सभी संग भाई हैं।
गुरु भाई सा ब्रह्म भाई हैं, मम पिता ब्रह्म हम भाई हैं।।

हम एक साथ कभी रहते थे, दुःख सुख की क्रिया सब करते थे।
नर नारी पशु पक्षी बन कर कभी एक साथ हम रहते थे॥
अब बदले तन से आये हैं सम्वन्ध निकट का करते हैं।
निज पूव जन्म का बदला लेने एक साथ हम रहते हैं॥

मित्र शत्रु की पहिचान

पूर्व जन्म का मित्र शत्रु व्यवहार परस्पर से जानो।
घर बाहर सब मिलते रहते, मित्र शत्रु मानव जानो।

महा अज्ञान

सृष्टि रचना ब्रह्म की लीला उसको द्रष्टा देखे रे।
ब्रह्म के काम को अपना कहना नाहक अविद्या में फँसता रे॥
जग की क्रिया प्रभु की लीला अपना कह मत भूलो रे।
हाय हाय निशि वासर करता धन जन सुख में भूला रे॥
अपने रूप का भेद न पाया नश्वर तन में भूला रे।
कह कह हिय उद्गार निकाला सत्य ज्ञान नहीं पाया रे॥
आत्म सुखाय क्रिया नित करता प्रभु विश्वास जमाया रे।
आई प्रभु दर्शन की वेला, साथ नहीं कुछ लाया रे॥

(१) प्रश्न—क्या कोई आज तक सारूप जीवधारी जीव बना पाया ?
(२) प्रश्न—क्या पौराणिक विज्ञान की समता में वर्तमान विज्ञान पहुँचा ?

घर में रहनेवाला घर नहीं हो सकता वैसे ही शरीर में रहने-वाला शरीर नहीं हो सकता।

देह न देही हो सके देही देह न होय।
गेह न गेही हो सके गेही गेह न होय।।

ज्यों गेह से तू भिन्न है त्यों देह से तू भिन्न है।
क्यों देह का अध्यास कर होता सदा तू खिन्न है।

तन रहित आतमा रूप तेरा तन सर्प रज्जु भ्रम से बनता।
जिमि नाटकीय नर एक ही वस्त्र बदल भिन्न बन जाता।।

चेतन योनी-तन-वस्त्र बदल कर लीला रत है।

योनी का तन वस्त्र पहिन कर चेतन लीला करता रे।
चेतन जीव लीला रत रहता केवल वस्त्र बदलता रे।।

अज्ञ जीव तन धर्म क्रिया कर बना संसारी रहता रे।
जीव सदा निज धर्म में रहता तो सुन्दर गति को पाता रे।

* शरीर धर्म *

जन्म-मरण, दुःख-सुख, क्षुधा-तृष्णा आदि हैं। अज्ञानी भ्रम से संसार की झंझावादी धन कोठी पद नाना सम्बन्धों को अपना मानकर संसार का ठीकेदार अजर-अमर अपने को मालिक मान बैठता है एवं अपने को क्षत्री, ब्राह्मण, हिन्दू, मुसलमान स्त्री, पुरुष मानता है।

* जीव धर्म *

विश्वास करें साथ अपना आन्तरिक ब्रह्मज्ञान का मैं आत्मा चेतन हूँ उसी चेतन सत्ता से जीव बना है और तन जीवित है भूल न जावें। मैं शरीर धर्म से सर्वदा रहित हूँ शुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा हूँ। आत्मा, द्रष्टा, ईश्वर या चेतन का जो शरीरो में अस्तित्व है वह अधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म के प्रभाव की एकमात्र व्यापक छाया है। लेकिन अनन्त विभु प्रभु ब्रह्म उससे अलग है। चेतनता उन्हीं का व्यापक अंश है, जो शरीर के मन, बुद्धि, अहकार की वृत्तियों पर उनकी चेतन सत्ता का प्रभाव है।

५. अन्तरंग की तरंगें और स्फुरण महात्माओं को बाधित नहीं करती

प्राण का अपान में हवन और अपान का प्राण में हवन करना

(गीता अध्याय ४—श्लोक नं० २९-३०)

प्रश्न—प्राण वायु का अपान वायु में हवन करना क्या है ?

उत्तर—प्राणायाम रूपी यज्ञ में अग्नि रूप अपान वायु है और हवि रूप प्राण वायु है। प्रथम चक्र में यहां प्राण वायु को अपान वायु में हवन करना है जैसे साधक जब पूरक प्राणायाम करता है तो बाहर की हवा को नासिका के द्वारा शरीर में ले जाता है तो वह हवा हृदय स्थित प्राण वायु को साथ लेकर नाभी से होती हुई अपान वायु गुर्दे के पास की वायु में विलीन हो जाती है। इस क्रिया को प्राणायाम में रेचक कहते हैं। यही अपान वायु के पास ही श्वांस रोका जाता है यह क्रिया अभ्यन्तर कुम्भक कही जाती है।

प्रश्न—प्राण वायु अपान वायु में हवन करना क्या है ?

उत्तर—दूसरे चक्र में प्राण वायु रूपी अग्नि में अपान बायु रूपी हवी का हवन समझना है। अपान वायु नाभि से होती हुई प्राण वायु तक आकर बिलीन हो जाती है। परन्तु भीतर की इस वायु को बाहर रोका जाता है जिसको बाह्य कुम्भक कहा जाता है। यह क्रिया श्वांस क्रम नासिका द्वारा प्राणायाम का पूर्ववत चलता रहता है।

गायत्री मंत्र—विधि

(१) ॐ भुर्भुवः स्वः (२) तत्स वितुंवरेण्यं

(३) भर्गो देवस्यं धीमहि (४) धोयो योनः प्रचोदयात्।

(१) पूरक ॐ भुर्भुवः स्वः से स्वांस दाहिने नाक के छेद से खींचो।

(२) अन्तर कुम्भक—तत्स वितुंवरेण्यं मन्त्र से स्वांस भीतर रोको।

(३) रेचक—भर्गोदिवस्य धीमहि मन्त्र से स्वांस बाहर करो।

(४) बाह्य कुम्भक—धायो योनः प्रचोदयात् मन्त्र से स्वांस को बाहर में रोको (जब तक रोक सको)।

नोट—(१) कुम्भक :—से सर्वदा ब्रह्म शक्ति अपने अन्दर है अनुभव करो।

(२) रेचक :—मन्त्र से अनुभव करो कि हमारे सभी पाप कम बहर हो रहे हैं।

त्रिकाल सन्ध्या का समय :—(१) प्रातः (२) दोपहर (३) सूर्यास्त। गायत्री मन्त्र के पहले आचमन, शिखा बन्धन, अमर्षण न्यास की क्रियायें कर लेनी चाहिये।

(१) आचमन—थोड़ा पानी दाहिने हाथ की हथेली के गड्ढे में लेवें, एक बार गायत्री मन्त्र पढ़ें। विश्व व्यापी सूक्ष्म शक्ति ह्रीं नीला वस्त्र धारणीं अनन्त मां का ध्यान करें। हथेली का जल पी लें। पुनः हथेली में जल लें, गायत्री पढ़ें, रजो गुणी शक्ति, श्रींग शक्ति मां पीत वस्त्र धारणीं का ध्यान करें। हथेली का जल पीलें। पुनः हथेली में जल लें, गायत्री पढ़ें, तमोगुणी क्लीं मां काली का लाल वस्त्र धारणी का ध्यान करें। जल पी लें।

(२) शिखा बन्धन—गायत्री मन्त्र द्वारा शिखा बन्धन करें।

(३) अमर्षण—दाहिने हाथ की हथेली पर पानी ले लेवें। उसे दाहिने नथुने के पास ले जाएँ, स्वांस खींचें, बांएँ अंगूठे से बायां नथुना बन्द रखें। अनुभव करें, भीतर के सभी पाप कट रहे हैं। अब वही जल बाएँ नथुने के पास ले जाएँ, स्वाँस छोड़े बाएँ नथुने से अनुभव करें कि हमारे भीतर का पाप निकल रहे हैं। फिर जल फेंक दें।

(४) न्यास में—(१) मस्तिष्क (२) मन (३) मुर्द्धा (४) नेत्र (५) कान (६) आंख (७) जीभ (८) अन्तःकरण जननेन्द्रिय (९) नाभि (१०) हाथ-पैर अपने हाथों से स्पर्श करें। साथ-सथ ॐ भर्भुवः स्वः तत्स वितुर्वरेण्यं, भर्गोदिवस्य धीमहि धीयो योनः प्रचोदयात् का ध्यान करते रहें। मन्त्र पढ़ते रहें।

(६) इसके बाद गायत्रो जाप पांच-पांच बार करें।

(७) एक माला गायत्री का भी जाप करें। अलग।

स्वतः अपने आप अनुभव करें

ऐ पामर अब तू भूल न कर तू हार रहा जीती बाजी।
जिस हरि को बाहर ढूंढ़ रहा वह तेरे घट में वास करे॥
प्रति स्त्रांस में सोहम् बोल रहें उस शब्द से चिन्त डटा दे तूँ।
प्रभु बिम्ब रूप प्रतिबिम्ब बने जीवात्मा हो तन में रहते॥
प्रति कर्म तुम्हारा देख रहें बेदान्त ज्ञान यह जान ले तूँ।
मन वच बुद्धि कर्म उनका उनहीं को अर्पण कर दे तू॥
निः स्वार्थ भाव तन दुनियां को मन ईश्वर को देते रह तूँ।
तन सार्थी है तेरा प्रभु संग से तन माना कौन तन मुख्य है तूँ॥
तन परिचय नाम स्वरूप किया जो छोड़ चलेगा जान ले तूं।
ब्रह्म माया की लीला प्रभु नट को दुनियाँ है नश्वर जान ले तू॥
कह कह हिय उद्गार निकाला सत्य ज्ञान नहीं पाया रे।
आई अब चलने को बेला साथ नहीं कुछ लाया रे॥

अब तो चलना होगा साथी सग नहीं होगा।
केवल कर्म पिदारा साथी होगा।
अब तो चलना होगा।

सम्पूर्ण चराचरों के मूल अधिष्ठान चेतन अनन्त एक है।

सच्चिदानन्द घन हैं, अनादि काल से एक भगवान की एक होने की मान्यता है, उनके आगे न कोई कुछ था, न है, न होगा।

वही एक सत्ता हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी वर्णों धर्मों के एक भगवान हैं सभी उसी अधिष्ठान के माध्यम से जन्म लेते हैं और मरने पर उसी के पास जाते हैं। जो जैसा चाहे उस सत्ता अधिष्ठान का नामकरण कर दे सब उसी के नाम हैं। धर्म तो परिवार बढ़ने पर जैसे बटवारा होता है वैसे आबादी के बढ़ने पर लोगों के विचार स्वरूप धर्म हैं परन्तु सभी मार्ग स्वरूप धर्मों पर चल कर सब उसी अधिष्ठान को शरणागत होंगे वहीं कर्मानुसार फैसला दे या दिलावें।

सृष्टि उसकी लीला है

जब कला रूप अनन्त भगवान चेतन अधिष्ठान को लीला करना होता है तो माया का अधिष्ठान बनते हैं। जैसे इन्द्रजाली मन्त्रों का अधिष्ठान बन जाता है। इन्द्रजाली के मन्त्र का सूक्ष्म आकार नहीं दीख पड़ता है केवल स्थूल रूप उसकी सूक्ष्म मन्त्रों की क्रीड़ा देखने में आती है। ठीक प्रभु की लीला क्रिया की सूक्ष्मता का पता नहीं लगता है स्थूल शरीरों आकारों को ही हम देख पाते हैं। उस अनन्त की सूक्ष्म कला इन आखों से देखी नहीं जा सकती है।

अनन्त भगवान को सृष्टि हेतु दो रूप

(१) समिष्टि-पूर्ण ब्रह्मांड या समूह वाचक ब्रह्मांड।

(२) व्यष्टि-व्यक्ति वाचक ब्रह्मांड या पिण्ड-पिण्ड में ब्रह्मांड।

(१) पूर्ण ब्रह्माण्ड या समूह वाचक ब्रह्माण्ड :

जो चेतन माया की व्यापकता पूरे चराचरों के समूह में व्यापक है जैसे वनों, जलाशयों और चराचरों आदि का जो समूह है उन सब में व्यापक है। विराट रूप से जिसके घेरे में सभी हैं।

(२) व्यक्ति वाचक ब्रह्माण्ड या पिण्ड-पिण्ड में ब्रह्माण्ड :

वही चेतन माया व्यापकता प्रत्येक समूहों के प्रति वस्तु प्रतिवृक्ष प्रति चराचर में व्यक्ति रूप से प्रत्येक शरीर में अलग-अलग एक देशीय वनी व्यापक है जसे राम का बन, सोहन का जलाशय, गोमती नदी, आम का वृक्ष, पीपल का वृक्ष, गोता रानी अलग-अलग शरीरवाले हैं उनमें भी व्यापक है।

पिण्ड-पिण्ड में ब्रह्माण्ड

व्यापक व्यक्ति वाचक ब्रह्माण्ड में क्रियात्मक-भेद दो

(१) शुद्ध उत्कृष्ट चेतन विशिष्ट माया सम्पन्न। विराट, आंशिक रूप से प्रत्येक शरीरों में अलग-अलग शुद्ध उत्कृष्ट इन्द्रियातीत चेतन एक देशीय रहते बने हैं। उन्हीं को ईश्वर द्रष्टा कहा जाता है।

(२) अविद्या मलिन माया इन्द्री सम्पन्न चेतन मलिन माया सम्पन्न—द्रष्टा ईश्वर का बिम्ब अलग-अलग शरीरों की इन्द्रियों में प्रतिबिम्बित हो इन्द्रियों को चेतन बनाते हैं उसी द्रष्टा ईश्वर के बिम्ब से बनी छाया या प्रतिबिम्ब शरीरों में जीव बना है।

नोट :– जैसे स्वर्ण पिण्ड से नाना प्रकार के आभूषण बनते हैं परन्तु सभी आभूषण स्वण ही हैं उनमें स्वण भेद नहीं हैं ठीक

इसी प्रकार व्यक्ति वाचक व्यापक चेतन और समूह वाचक व्यापक चेतन में भेद नहीं है अभेद है। द्रष्टा ईश्वर विम्ब इसी का प्रतिविम्ब जीव है। विम्ब शुद्ध माया उत्कृष्ट इन्द्रियातीत अन्तःकरण में द्रष्टा और मलिन माया सम्पन्न इन्द्रियों में प्रतिविम्बित संसारी विषय गत इन्द्रियों में पड़ने के कारण अज्ञानी जीव बना है।

इसका विवरण आगे और किया गया है।

(१) ईश्वर--बुद्धि का नियमायक, माया का अधिष्ठान, चेतन विशिष्ट, शुद्ध माया सम्पन्न, सतगुणी, सर्वज्ञ, रजो गुण तमो गुण को दबाकर असंग निरविकार अन्तःकरण में ईश्वर बनता है। जो स्वइच्छा से संसार का शृजन पालन प्रलय करता है लोक परलोक में जीवों को कर्म का फल देता है भक्तों पर अनुग्रह करता है। सुषुप्ति में स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का लय स्वरूप है और आनन्दमय कोष में आनन्द का स्वरूप है।

अधिष्ठान में लोग भ्रम से शरीर का बन्धन समझ कर जीव में शरीर होने का भ्रम करते हैं अधिष्ठान में शरीर का बन्धन नहीं है जीव का शरीर भी जड़ चेतन की अविद्या की ग्रन्थि है। शरीर नहीं है।

(२) जीव-- मलिन मायायुक्त अधिष्ठान चेतन व्यापक आभास बुद्धि को चेतन बना देता है बुद्धि सत्व प्रधान है परन्तु इन्द्रियों के विषयों का काम करने के कारण अधिष्ठान चेतन का आभास बुद्धि को विषयी चेतनापूण बना देता है यही जीव है। जो पाप पुण्य भोगता है लोक परलाक में आता जाता है करता भोक्ता संसारी बना है।

(३) कूट--माने तीनों शरीरों का निरविकारी रूप को कूट कहते हैं। अनन्त ब्रह्म अधिष्ठान चतन के सहारे माया ठहरी है। माया व्यापक है। शुद्ध चेतन ब्रह्म की अपेक्षा व्यापक नहीं है।

* भ्रम *

जीव मलिन माया (इन्द्रियों का साथ) में रहने के कारण शरीर के पांचो तत्वों के गुणों शब्द स्पर्श रस रूप गंध और तन मात्राओं एवं सत रज तम में पड़ा रहता है। अपने तई जोवात्मा अपने को इन्द्रियों के बाहर ईश्वरांश शुद्ध चेतनांश नहीं समझता। मैं शरीर हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, शूद्र हूं, मैं नारी हूँ, नर हूँ, अधिकारी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं वान प्रस्थ हूँ, मैं सन्यासी हूँ इत्यादि। ऐसा अज्ञानी मानकर मैं धनी हूँ, गरीब हूँ मान कर अज्ञानी बना रहता हैं अपने ब्रह्म स्वरूप को नहीं देखता है।

प्रमाण :– मानों शरीर रूपी वृक्ष के अन्त:करण रूपो घोंसले में दो पक्षी बैंठे हैं एक पक्षी कर्म भोग फल खाने की क्रिया में लगा है नाना प्रकार की इन्द्रो भोग के फल का रस ले रहा है मग्न है। और दूसरा पक्षी चुपचाप बैठा है फल खाने वाले पक्षी को देख रहा है। फल खानेवाला पक्षी यदि ईश्वर दृष्टा कुठस्थ रूपी ब्रह्म सत्ता रूपी पक्षी को एक बार भी देखे; और तदवत बने; तो उसका भी कल्याण ही कल्याण है। लेकिन माया लिप्त अज्ञानी जोव रूपी पक्षी अपनी भोग क्रिया में मस्त है दृष्टा देख रहा है।

प्रश्न —सम्पूर्ण चराचर जगत रूपी अवस्तु सही क्यों भाष रही है ?

उत्तर—जैसे रस्सी का भ्रम सर्प बना देता है। मृग तृष्णा का भ्रम पानी बना देता है। सीप का भ्रम चांदी बना देता है, वहां सर्प, पानो, चांदी नहां है परन्तु रस्सी का मृगतृष्णा का सोप का वास्तविक ज्ञान न रहने से, न जानने से, अज्ञान से भ्रमवश वैसा बन जाता है वसे सम्पूर्ण चरचर सम्पूर्ण जगत कला रूप अनन्त भगवान को न जानने के कारण ससार रूप भाषा रहा हैं।

श्रीवन काल में प्रत्यक्ष अनुभव करें ?

स्वप्न काल की सारी बातें, स्वप्न काल तक सच भाषे रे।
स्वप्न काल लघु आयु का होता, जगने पर नस जाता रे।।
त्यों जाग्रत जीवन दीर्घ स्वप्न है जीवन पर्यन्त सच भाषे रे।
जाग्रत जीवन दीर्घ स्वप्न है, मरने पर नस जाता रे।।

* कर्म प्रधान *

पृथ्वी में जैसा बीज पड़ता है वैसा पौधा उगता है। वैसा फल फलता है। पृथ्वी कुछ नहीं परिवर्तन अपने से करती। जैसे शरीर के रोवें, बाल, नख स्वतः बढ़ते हैं। ब्रह्म शक्ति चेतन कुछ नहीं करती, ठाक उसी प्रकार जीव का कर्मानुसार शरीर, घर, समाज स्वतः अपने कर्मों से ससार में मिलता है। ब्रह्म शक्ति चेतन कम के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन नहीं करती है।

व्यष्टि के सुषप्ति दशा में चेतन जीव। समष्टि के कारण दशा में चतन ईश्वर हैं

(१) व्यष्टि के सुपुप्ति—काल में चेतन माया शुद्ध अपने एक आंशिक भाग से भिन्न-भिन्न शरीर में जीव का निर्माण करता है और उसी में (कारण, सुषुप्ति के शरीर में आनन्द कोष का व्यवहार होता है।

(२) उसी प्रकार समिष्टि कारण सुषुप्ति की दशा में उत्कृष्ट माया सम्पन्न चेतन ईश्वर के कारण शरीर हिरणागभ आदि में आनन्द का अनुभव करता है।

(३) परन्तु प्रलय तुरिया काल में केवल प्रकृति पुरुष शुद्ध चेतन पुरुष के सिवा प्रपंच शरोर नहीं रहता है।

प्रमाण (१) जैसे पानी में जब फेन डाला जाता है तो पानी में फेन का कुछ भाग पहले रह जाता है। (२) परन्तु थोड़ी देर बाद

वह अंश भी पानी में घुलमिल जाता है (३) शुद्ध जल रह जाता है। इसी प्रकार पहले व्यवहारिकता जीव की सत्ता पंचभूतों से भाषित होती है पुनः तन मात्राओं में विलीन हो जाती है। तद-नुसार वह सत्ता भी विलीन हो जाती है। शुद्ध चैतन्य स्वप्रकाश विभुसत्ता रह जाती है। जैसे अग्नि से उसकी गर्मी अलग नहीं हो सकती अग्नि, गर्मी की एकता है उसी प्रकार जीव को बाहरी लौकिक ज्ञान नहीं रहता परन्तु आनन्द स्वरूप का आन्तरिक ज्ञान बना रहता है। यही ज्ञान समाधि मोक्ष की दशा में बना रहता है। जीव ब्रह्म एक रूपता को प्राप्त हो जाता है।

* जीव में ईश्वर का गुण *

लोहे के गोले को भयानक आग में डाल देने पर लाल हो जाता है उस समय उसमें आग का गुण उष्णता आ जाती है और लोहे के गोले में अपना भार गुण भी रहता है। इसी प्रकार समाधि मोक्ष की दशा में जीव में अपना गुण रहते हुए ब्रह्म का गुण आनन्द का आ जाता हैं।

नोट—अन्त:करण और अन्त:करण के उत्कृष्ट माया सम्पन्न ईश्वर में भी सूक्ष्म वृत्तियां होती हैं अस्तु ईश्वर ज्ञानी एव प्राज्ञ अज्ञानी जीव भी प्रलय और सुषुप्ति की अवस्था में अपने-अपने स्वरूप का अनुभव करते हैं।

(१) वास्तव में समिष्टि रूप अज्ञान उपहित चतन्य ईश्वर की संज्ञा है।

(२) व्यष्टि में प्राज्ञ रूप अज्ञान उपहित चैतन्य जीव की प्राज्ञ संज्ञा है।

इन दोनों में कोई भेद नहीं है जैसे स्वर्ण पिण्ड और उसके बने आभूषणों में भेद नहीं हैं।

इस अज्ञान उपहित चेतन (प्राज्ञेश्वर) और विशुद्ध चेतन को इस प्रकार जानें। जैसे लोहे के गोले में वजन आदि रहते हुए भी जला देने का गुण रहता ही है। ठीक इसी प्रकार शुद्ध चेतन के बल पर ही प्राज्ञेश्वर की सृष्टि लोला दीख पड़ती है। परन्तु विशुद्ध कला रूप अनन्त प्रभु चेतन की सत्ता सर्वदा अलग है, सब में है, सभो शरीरों में लोक परलोक प्रतिभाषित है।

* अत्यन्त सांसारिक सत्ता को भुलाया नहीं जा सकता *

श्री शंकराचार्य ने तीन सत्ता ससार की मानी है :-

(१) यतिभासिक सत्ता (२) व्यवहारिक सत्ता (३) पारमार्थिक सत्ता।

(१) प्रतिभाषित सत्ता :—प्रतीति काल में सत्य भाषित हो किन्तु बाद में असत्य सिद्ध होती है जसे-रस्सी का भ्रम सर्प बनता है। (२) व्यवहारिक सत्ता—जो संसार में व्यवहार के लिये आती है जैसे-सांसारिक पदार्थों का नाम और रूप है। संसार में प्रत्येक वस्तुओं का नाम रूप व्यवहार मे लाया जाता है। सब इन्द्रियों की क्रियात्मक नाम रूप भा व्यवहार में आते हैं किन्तु ब्रह्मज्ञान होने पर केवल ब्रह्म के सामने नाम रूप का आधार शरीर नहीं रहता है ब्रह्म सत्ता चेतन ब्रह्म हो नाम रूप का आधार मात्र हो जाता है क्योंकि नाम रूप सर्वदा नष्ट होता रहता है चौरासी के चक्कर में हमलोगों के कितने नाम रूप बने होंगे एक ही जीव का नाम रूप कौन-कौन रहा होगा। सोचें। व्यवहार में भी अपने पूव शरीर के नाम रूप की सत्ता नहीं रहती है। बल्कि नाम रूप के आधार ब्रह्म की सत्ता रहती है।

नोट :-(१) प्राज्ञ जोव (२) ईश्वर दृष्टा पिण्ड, पिण्ड में रहने से छाया जीव बना सृष्टि की लोला करता है।

(३) पारमार्थिक सत्ता—जो सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों से नितान्त विचित्र एव त्रिकाल से भो बँधी नहीं है, एकान्तिक सत्य है, ब्रह्म है। चेतन जो स्थूल इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता है। इसका नाम रूप स्वयं साक्षात्कार परिज्ञान सूक्ष्म अनुभव से ही सम्भव है अन्यथा नहीं। जैसे :-एक ईश्वर की समिष्टि में शुद्ध माया सम्पन्न ईश्वर का क्रिया भक्ति होती है। उसी प्रकार व्यष्टि प्राग में मलिन मायावी जीव की; क्रिया भाषित होती है।

किसी वस्तु में उसी के समान अन्य वस्तु के आरोप (भ्रम) को अध्यारोप कहते हैं। जैसे रस्सी में सर्प का भान होना अध्यारोप है। इसो प्रकार स्वप्रकाश अनन्त ब्रह्म रूपी वस्तु में अज्ञान से सम्पूर्ण चराचर सा अवयव स्थूल रूप होने का भ्रम नश्वर है परन्तु अवस्तु सर्प रूप भाषित होता है परन्तु ब्रह्म रूपी रस्सी वस्तु के ज्ञान हो जाने पर जगत रूपी अवस्तु सर्प का भ्रम जाता रहता है ऐसे भ्रम को विर्वत भी कहते हैं।

वेदान्त का कहना है कि अज्ञान सत भो नहीं है और असत भी नहीं है। प्रमाण यदि सत होता तो सर्प रूप सर्वदा सब जगह रहता और कभो बाधित नहीं होता परन्तु ऐसा नहीं होता है ब्रह्म बोध (रस्सी ज्ञान) हो जाने पर उसका असत (सर्प) ब्रह्म का नाश हो जाता है इसलिए अज्ञान सत नहीं है।

अज्ञान असत भी नहीं है यदि ब्रह्म असत होता तो जड़ पदार्थों (आकाश, वायु, अग्नि, पानी, भूमि) के बनाने का कारण कैसे बनता इसलिये असत भी नहीं है अतः वह ब्रह्मस्व प्रभाव विभु दोनों से रहित दोनों का कारण अनिर्यवचनीय है। देह से लेकर बुद्ध तक जितने जड़ पदार्थ हैं उनकी भिन्नत्व भाव को हटा कर सब ब्रह्म का हो स्वरूप है ऐसा दृढ़ निश्चित अनुभव में ही भगवान हैं। इस स्थिति के विश्वास का निदिध्यासव कहते हैं।

* अपना कर्म पिटारा *

१-मल २-आवरण ३-विक्षेप।

(१) मल—पिटारा अपना किया हुआ कर्म। मल तो अपने किये कर्मों का पिटारा हैं जिसको अपने आप भोगना है अथवा शुद्ध कर्म करके उसे पूरा करना पड़ता है जब तक अपना कुछ भी कर्म शेष रहेगा चौरासी के चक्कर में घूमना पड़ेगा।

(२) आवरण—वह अविद्या की शक्ति है जो दृष्टि के आगे परदा डाल कर सच्चिदानन्द स्वरूप को ढँक लेती है जैसा छोटा सा मेघ का टुकड़ा कई योजन विस्तार वाले सूर्य को ढक लेता है। अज्ञान परिच्छिन्न सीमित है फिर भी अपरिच्छिन्न असीमित व्यापक असंसारी आत्मा को संसारी बना देता है वास्तव में स्थूल सूक्ष्म सभी नाम रूप, ब्रह्म रूप जीव के आवरण शरीर के नाम रूप हैं उसी चेतन (ब्रह्म) के आधार अवलम्ब पर शरीर का नाम रूप ठहरा है जीव ब्रह्म का ज्ञान न होने से सभी जीव के आवरण शरीर के नाम रूप को अपना रूप मान बैठते हैं। सतसंग और गुरु शरणागत होने आवरण छूटता है।

विक्षेप—ब्रह्म से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण नाम रूप जगत पैदा करनेवाली शक्ति का विशेष कहते हैं जस रस्सी का अज्ञान सर्प बना देता है उसी प्रकार आत्म विषयक अज्ञान ही भ्रम से जीव में विशेष शक्ति ही स्थूल सूक्ष्म शरीर से लेकर पूरे ब्रह्मांड आकाशादि प्रपंच को निर्माण कर देती है आत्म स्वरूप-ज्ञान होने से तथा उपासना करने से छूटेगी। विक्षेप

* किसी काम के बनने का कारण दो होता है *

(१) निमित्त कारण (२) उपादान कारण।

बिना कारण किसी पदार्थ की बुनियाद कैसे ?

(१) निमित्त कारण—बनानेवाले को कहते हैं जैसे घड़े का बनानेवाला कुम्हार है। (२) उपादान कारण—जिस चीज से कार्य वनाया जाय जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है इसीलिए घड़े का उपादान कारण मिट्टी है। परन्तु ईश्वर सृष्टि का बनाने वाला भी है और स्वय सृष्टि का रूप भी है। इसलिये ईश्वर जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण हुआ।

उपादान कारण तीन प्रकार का होता है (१) आरम्भक (२) परिणामी (३) विवर्त उत्पादक।

(१) आरम्भक—बहुत चीजें मिलकर एक हो जाती हैं जैसे ईटा, मिट्टी, सिमेंट, लोहा और लकड़ी के मेल से मकान, और बहुत से सूतों के मिलने पर कपड़ा बन जाता है। ईश्वर एक होने से जगत का आरम्भक कारण नहीं बन सकता।

(२) परिणामी कारण—जिसका रूप बदल जाय, परन्तु व्यवहार में आता हो जसे दूध से दही का रूप बदलना दोनों रूप व्यवहार में आता है।

(३) विवर्तोपादन जिसका रूप ज्यों का त्यों रहे बदले नहीं और दूसरे रूप में भाषने लगे जैसे रस्सी का रूपान्तर नहीं होता है परन्तु सर्प भाषने लगता है वसे सीप मृगतृष्णा है वहां चांदी पानी नहीं है परन्तु भाषने लगता है। रस्सी में सप, सीप में चांदी मृगतृष्णा में पानी का अधिष्ठान ईश्वर को न जानने से अज्ञानवश जगत भाष रहा है। अस्तु रस्सी सत्य विवंत सर्प चांदी, पानी मिथ्या है।

जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट के तन्तु रूप कार्य के प्रति चैतन्य जड़ शरीर के जीवित जीव होने के कारण से ही तन्तु बनाने में सफल है यदि मकड़ी में चेतन अंश जीवन रहे और जड़ शरीर न

रहे तो तन्तु जाल बन नहीं सकता है। अस्तु तन्तु जाल कार्य है और जड़ शरीर में चेतनांश रहना कारण हुआ। इसी प्रकार ईश्वर अपनी चेतन अवस्था के कारण, जगत का निमित्त कारण और अज्ञानावस्था माया के संयोग के कारण उपादान कारण दोनों हैं। जगत माया जन्य है।

मकड़ी पौनी के बिना अर्थात् बाहरी साधनों के बिना जाल तैयार कर देती है। वैसे प्रभु भी बिना बाहरी साधनों के अपनी मायां शक्ति से सूक्ष्म से लेकर स्थूल चराचर की रचना करता है। सूक्ष्म चेतन्य कारण अव्यक्त। जगत कारण व्यक्त।

* समिष्टि और व्यष्टि ईश्वर जीव विचार *

सब चराचरों का सूक्ष्म शरीर और बुद्धि विशेष के अनुसार एक ब्रह्म चेतन मानने पर एक एकता की ही मान्यता होगी। परन्तु वनों जलाशयों तथा नाना वस्तुओं का समूह भी है। अलग-अलग समूह में नाना नामधारी अलग-अलग वृक्ष जलाशय नामधारी भी अलग२ हैं। इसी प्रकार जीव समूह में भी हैं अलग-अलग नाम रूप धारी जीव भी हैं। सब जलाशयों का जल का रूप एक है। सब जलाशयों का जल मिला देने पर सब एक रूप जल हो जावेगा। वेदांत में इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर मन बुद्धि की एक और अनेक एक देशीय रूप जीव गत की मान्यता है फिर भी अनेक जीवों में चेतन पूर्ण ब्रह्म की सत्ता की एक मान्यता है। समिष्टि रूप एक अनन्त ब्रह्म एक होते हुए भी जीवगत एक देशीय सूक्ष्म सत्ता रूप से उत्कृष्ट शुद्ध माया सम्पन्न अनेक शरीरों के अन्तःकरण में एक ईश्वर द्रष्टा अनेक बने हैं। और वही चेतन ब्रह्म इन्द्रियों की मलिनमाया सम्पन्न शरीरों के अन्तःकरण में चेतन छाया इन्द्रीगत; व्यष्टि प्राग में अज्ञानी अनेक जीव भी बने हैं।

समष्टि– सूक्ष्म शरीरों को जब शरीर रूप विराट एक मानते हैं तो एकत्व भाव से एक बुद्धि भी बनती है। बन जलाशय समष्टि पद में व्यवहार होने से एक शुद्ध अधिष्ठान चेतन का भाव हो जाता है।

व्यष्टि—व्यष्टि में अनेक जीव अलग-अलग मानते हैं तो वृक्ष जलाशय अलग-अलग नाना रूप की मान्यता होती है जो व्यष्टि पद के व्यवहार में पाया जाता है। समष्टि में चैतन्य आत्मा ईश्वर है जिसको हिरण गर्भ सूत्रात्मा प्राण कहते हैं। इसी प्रकार व्यष्टि प्राग तेजस में जीव गत चेतन जीवात्मा है। समष्टि व्यष्टि दोनों में मनामय विज्ञानमय प्राणमय की क्रियात्मक कोष से आनन्द का अनुभव होता है। उस समय स्थूल सूक्ष्म दोनों कारण शरीर (सुषुप्ति) में लय हो जाते हैं।

समष्टि रूप अधिष्ठान चेतन शुद्ध माया सम्पन्न ईश्वर रूप दशा चार भोग की व्याख्या :

शरीर	स्थूल शरीर विराट	सूक्ष्म शरीर हिरण गर्भ	कारण शरीर अव्याकृत	महाकारण शरीर शुद्ध-ब्रह्म
दशा	जाग्रतदशा	स्वप्न दशा	सुषुप्ति प्रगाढ़ निद्रा आनन्ददशा	समाधि दशा
अभिमानी	विश्वा नर भोग	सूत्रात्मा भोग	अन्तर्यामीभोग	ब्रह्मानन्द भोग

नोट—समिष्टि रूप अधिष्ठान चेतन प्रभु कारण जीवों का बीज भूत हैं। इसको इसी से कारण शरीर कहा गया है यही स्थूल सूक्ष्म कारण या बीज स्वरूप है।

समष्टि और व्यष्टि में जीवात्मा का विभिन्न रूप है अधिकारी पुरुष को प्रथम विश्व के वैश्वानर का तेजस में सूत्रात्मा का प्राज्ञ से ईश्वर सभी स्वरूप ों का ज्ञान करना चाहिये। पुनः मैं ही वैश्वनर हूँ विश्व को, तेजस को सूत्रात्मा के भोग को ईश्वर रूप से चिन्तन करें। समिष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि युक्त ओंकार का वाच्य रूप पर ब्रह्म आत्मा ही है जानकर चिंतन करें।

व्यष्टि रूप से अधिष्ठान शुद्ध चेतन का आभाष जीव मलिन माया शरीर का भोग :

शरीर	स्थूल शरीर	सूक्ष्म शरीर	कारण शरीर	महा कारण शरीर
अभिमानी भोग	विश्व भोग	तेजस भोग	प्राज्ञ (अज्ञान) भोग	ब्रह्मभोग
दशा	जाग्रत दशा	स्वप्न दशा १७ इन्द्रियों का अपना कर्मपिटारा	सुषुप्ति दशाप्रगाढ़ निद्रामें भोगचेतन आत्मा का	तुरीया दशा
ॐ की चार मात्रा :—अ	उ	म	अर्द्ध मात्रा	

* ईश्वर जीव की एकता *

समष्टि रूप में उत्कृष्ट शुद्ध माया सम्पन्न चेतन एक हैं। वाष्टि में प्राव्यः मलिन माया सम्पन्न शुद्ध चेतन आभास जीव अनेक हैं। जैसे स्वर्ण पिण्ड और स्वर्ण के आभूषणों में भेद नहीं है उसी प्रकार एक देशीय शरीर अधिष्ठान अनन्त स्व प्रकाश विभु से बने शुद्ध माया सम्पन्न चेतन ईश्वर गत द्रष्टा शुद्ध माया सम्पन्न चेतन द्रष्टा उसकी छाया से बना जीव में भेद नहीं है।

(१) व्यष्टि प्राज्ञ में स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर की मान्यता है। और उसमें विश्व तेजस प्राज्ञ जीव की मान्यता है। इसी शरीर में जाव क्रिया करता है मान्यता है।

(२) समष्टि में चेतन ईश्वर की विराट, सूक्ष्म, कारण शरीर की मान्यता है। विश्वानर सूत्रात्मा (हिरण गभ) सुषुप्ति (आनन्द सम्पन्न) ईश्वर स्वरूप का भी मान्यता है। (३) परन्तु परमनित्य शुद्ध कला रूप अनन्त एक तुरोया चैतन्य की मान्यता भो है जो स्वतंत्र सत्ता सबका अधिष्ठान अनन्त रूप है।

तुरीया अवस्था

तुरीया वस्था—जिस प्रकार पूरे बन के ऊपर का वर्तमान अकाश और अलग-अलग वृक्ष के ऊपर का वर्तमान आकाश तथा जल, जलाशय नदी के ऊपर का वर्तमान आकाश अलग-अलग आकाश हैं। परन्तु सब आकाश महाकाश के ही अन्दर हैं। इसी प्रकार ईश्वर, चैतन्य, समिष्टि, व्यष्टि का प्राज्ञ, चेतन जीव का आधार सर्वव्यापी विशुद्ध अखण्ड चैतन्य एक अधिष्ठान ब्रह्म ही हैं। यही शुद्ध चैतन्य को तुरिया भगवान ब्रह्म का चौथा पाद कहते हैं ईश्वर और प्राज्ञ की एकता त्वमसि बाच्यार्थ है प्रोगेश्वर शुद्ध चैतन्य लक्षार्थ है यह आनन्द स्वरूप आनन्द प्राप्ति की सत्य स्थिति है।

(१) स्वप्न तेजस में सूक्ष्म शरीर भोग—स्वप्न में स्थूल सूक्ष्म में लय हो जाता है व्यष्टि में प्राज्ञ सूक्ष्म भोग और समष्टि में सूतात्मा सूक्ष्म भोग, त्रय कोषों (मना मय, विज्ञानमय, प्राणमय) का मन बुद्धि द्वारा विषयों का अनुभव होता है।

(२) सुषुप्ति में कारण शरीर चैतन्य आत्मा का भोग—व्यष्टि, समष्टि में विशिष्ट माया सम्पन्न शुद्ध बुद्धि द्वारा केवल चैतन्य आत्मा आनन्द का अनुभव करता है क्योंकि शुद्ध चेतन ईश्वर आत्मा ही व्यष्टि समष्टि रूपों का मूल है।

मृत्युकाल में स्थूल से सूक्ष्म जीव के निकलने का क्रम क्रमशः :

प्रथम जीते रहने पर ही वाणी मन से प्रविष्ट हो जाती है। बाण के साथ सभी इन्द्रियों की शक्तियां मन में सिमिटने लगती हैं फिर मन प्राण में समा जाता है। प्राण सभी भूतों के शब्द स्पर्श रूप रस गंध में समा जाता है। स्थूल शरीर में भूतों का तेज ही सूक्ष्म शरीर है सूक्ष्म शरीर जीवात्मा में समाहित हो जाता है। इसके बाद आत्मा दृष्टा नेत्र या ब्रह्मरन्ध्र अथवा स्थूल के किसी भाग से निकलता है।

(१) महाज्ञानी महापुरुष की दशा— ब्रह्म ज्ञानी जीवन काल में ब्रह्म का साक्षात्कार करके ब्रह्म में लीन हो जाता है।

(२) ब्रह्म में लगा अधकचरा मनुष्य की दशा—ब्रह्म विद्या के प्रभाव से, ब्रह्मलोक के संस्कार प्रभाव से शुद्ध हृदय वह मनुष्य परमेश्वर के अनुग्रह से सूर्य की रश्मियों के सहारे ऊपर जाता है। और ॐ के उच्चारण में जितना समय लगता है उतनी देर में सूर्य लोक ब्रह्म द्वार तक जाता है। रहता है।

(३) साधारण मनुष्य कारण बीच स्वरूप परमेश्वर के विधानुसार कर्म फल भोगने के लिये दूसरे-दूसरे शरीरों से ८४ का चक्कर में पड़ा अपना कर्म भोगता रहता है।

* क्या ब्रह्म शक्ति दो हैं ? *

व्यापक ब्रह्म शक्ति क्या दो है नहीं अटूट सत्ता एक जान।
ब्रह्म शक्ति बिना क्या होंगे शक्ति ब्रह्म बिना नहीं जान।
तन से नर नारी पहिचाने ब्रह्म शक्ति तन हीन हैं जान।
अलख अरूप अनूठो सत्ता व्यापक सृष्टि लीला जान।

योग का मानसिक अभ्यास

दुनियाँ तो है प्रभु को लीला भ्रम से तू अपनाया रे।
दुनियाँ में भोगी बन बैठा आतम रूप भुलाया रे॥
झूठी दुनियाँ को सच कहता है निज को नहिं लख पाया रे।
झूठी को झूठा नहीं समझा जीवन व्यर्थ गँवाया रे॥

—कश्यप

लेखक की अन्य कृतियाँ :—

(१) व्याकरण अपठित ज्ञान-माला
(२) शिव महात्म दर्शन
(३) अध्यात्मिक ज्ञान-विचार (स्वरूप परिचय)
(४) मानव जीवन मीमांसा
(५) शङ्कर मीमांसा (शिव चरित)

मूल्य—जन कल्याण

पुस्तक मिलने का पता :—
दारागंज सेवाश्रम, वाराणसी

प्रकाशक : कश्यप प्रकाशन, मुहवल, गाजीपुर।
मुद्रक—चन्द्र प्रकाश प्रेस, लाजपत नगर, वाराणसी